नीहारिका

कहानी मासिक



जनवरी १९६६

नीहारिका

कहानी मासिक

वर्ष ६ अंक ९

सम्पादक
राम मेहरा

मुद्रक-प्रकाशक
जगदीश मेहरा

स्वत्वाधिकारी
मेहरा न्यूजपेपर्स

कार्यालय
हॉस्पिटल रोड, आगरा-३

मुद्रणालय
रमेश प्रिंटिंग प्रेस, आगरा-३

कवर-मुद्रण
मेहरा आफसेट प्रेस

मूल्य
६० पैसे

मुखपृष्ठ : विष्णु पंजाबी

अपनी बात

कहानी की जातीय प्रयोजन तथा अन्य आरोपित प्रयोजनों से असम्पृक्तता एक अनिवार्य शर्त है। यह पहले समझ लेना है कि जीवन की एक ऐसी विशुद्ध स्थिति की कल्पना जिसके अन्तर्गत जीवन विशुद्ध है और जातीयता से मुक्त है, कठिन नहीं है। जीवन कहीं भी है, एक-सा है, किन्तु इस एकता में अनेकता और विभिन्नता है। साधारणतः कहानीकार के सोचने का ढंग सार्वत्रिक होता है, लेकिन मूल आधार जो संस्कृति विशेष से प्रभावित होता है, उस संस्कृति के अनुरूप होता है। यह व्यवधान है।

इस धरातल से उठकर कहानीकार एक शून्यता में अपने को अवस्थित कर सकता है। तब उसके चिन्तन का आधार सन्तुलित होगा। और यह शून्यता एक ऐसी स्थिति नहीं है कि इसमें से कोई चिन्तन की सामग्री नहीं मिल सकती। वास्तव में यह शून्यता झुकाव से मुक्त होने की स्थिति है। झुकाव-मुक्त दृष्टि जीवन को किसी परिवेश के सन्दर्भ में नहीं देखती। जीवन हर ओर एक-सा है। एक-जैसा बहाव। एक ही तरह की यन्त्रणा में सब।

कहानी से यह अपेक्षा है कि वह मानव के सत्यरूप की प्रतिष्ठा करेगी और जातीयता से असम्पृक्त रहेगी, क्योंकि साहित्य का प्रमुख दायित्व है कि भय की यन्त्रणा से मानव को वह मुक्ति दिलाये।

और यह कहानीकार की सबसे बड़ी निरपेक्ष स्वीकृति होगी कि वह अपने को एक शून्यता में अवस्थित कर ले।

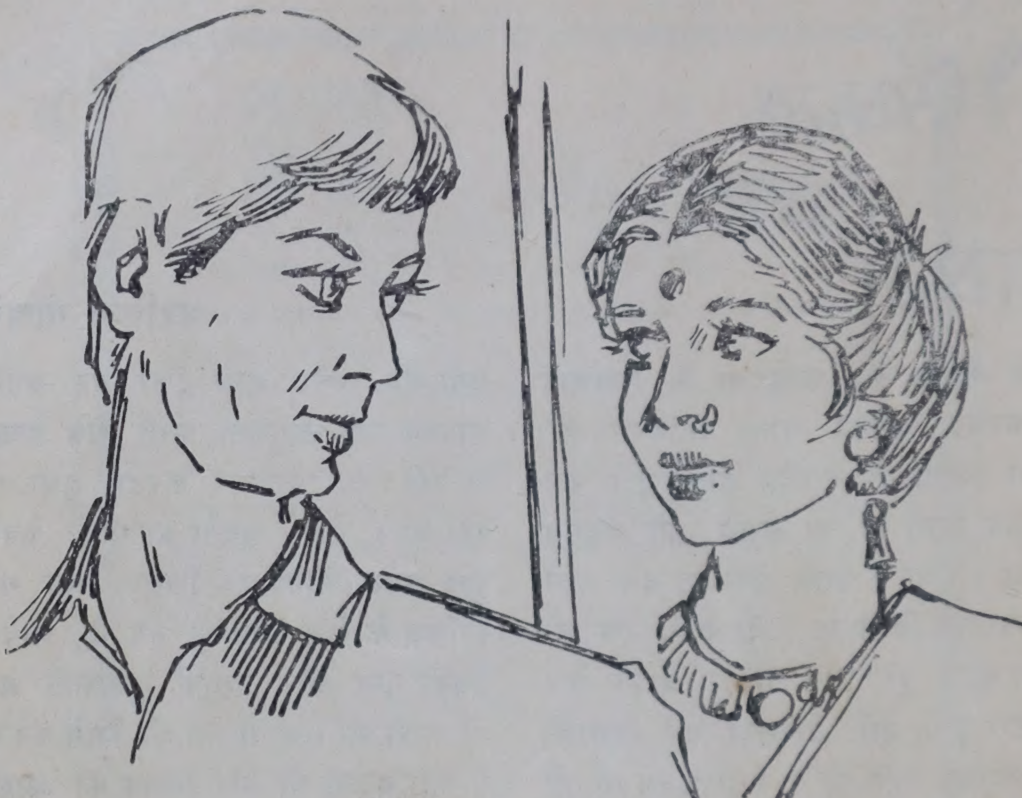
नैतिकता का दायरा

अरविन्द गोखले

उस व्यक्ति का उत्सुकता से इन्तजार करना जिसका आना निश्चित हो, बहुत ज्यादा तकलीफदेह होता है। कम से कम उसने तो उस समय यही महसूस किया। मेघा ने उससे ठीक डेढ़ बजे आने का वायदा किया था, और अभी एक ही बजा था। पूरे तीस मिनट बाकी थे। लोकल ट्रेन, बसें, टैक्सियां सब दिशाओं से आ-जा रही थीं। मेघा इनमें से ही किसी एक से आयेगी। उसके आने के बारे में उसे कोई शक नहीं था, लेकिन फिर भी वह उत्सुक और बेचैन था। उसे बुरी तरह पसीना आ रहा था। बार-बार वह अपनी घड़ी की सूइयों की तरफ देख रहा था। उसकी आंखें चर्चगेट, ईरोस, स्टेडियम और पुरोहित के बीच के चौराहे पर टिकी हुई थीं। चिन्ता, दिल के तेजी से धड़कने, शक और इस तरह के हजारों उद्वेगों से उसका मन बेचैन था।

कितनी अद्भुत बात है! दस साल पहले भी वह मेघा का इसी तरह इन्तजार किया करता था, या तो कालिज लायब्रेरी में या फिर मन्दिर के पास। उस समय वे दोनों पूना में थे। अब जगह, शहर और उसके चारों ओर की हरेक चीज बदल गयी थी। और आज फिर वह अपने-आपको उसी उत्सुकता, उसी तीव्र इच्छा से उसी का इन्तजार करता हुआ पा रहा था। ऐसा लगता था मानो केवल कुछ समय आगे को खिसक गया था, कालिज के दिन खत्म हो गये थे, लेकिन उनकी गुप्त और उत्सुक मुलाकातें अब भी जारी थीं। मानो प्रेम की कसमें कंकरों में नहीं बदली थीं और मिलन की आशा कभी भी खत्म नहीं होने वाली थी।

जब स्टेशन के पास की भीड़ में उसे मेघा दिखायी नहीं दी, तो वह सड़क पार करके दूसरी तरफ चला गया और ईरोस सिनेमा के सामने खड़ा होकर उसका इन्तजार करने लगा। वह पोस्टरों की तरफ देखने लगा। शायद यह पिक्चर उसकी वर्तमान मानसिक दशा के अनुरूप रहेगी, उसने सोचा! लेकिन उसके दिमाग में क्या बात थी? कई लम्बे सालों के बाद अचानक कल मेघा उसे अजीबोगरीब ढंग से मिल गयी थी। एक लम्बे समय के बाद अब उसका मन फिर विचलित होने लगा था, उसकी आंखें आंसुओं से भर आयी थीं और उसके मन में आशा और निराशा की मिली-जुली भावनाओं ने



जन्म लिया था। उस कुछ देर की मुलाकात में उसने महसूस किया था कि मेधा के दिल में उसके लिए अब भी पहले जितना ही प्रेम है, उसमें कोई परिवर्तन नहीं आया था। पुराने घाव फिर से हरे हो आये थे। पुरानी भावनाओं ने फिर से सिर उठाना शुरू कर दिया था और वे बेकाबू हो गये थे। अनजाने में उसने सड़क पार कर ली और एक रेस्त्रां के सामने से गुजरा। लेकिन उस होटल में घुसने का उसके पास कोई बहाना नहीं था। उसकी जेब में दिन भर के लिए काफी सिगरेटें थीं। उसके होटल के कमरे की चाबी भी उसकी जेब में सुरक्षित रखी थी। उसकी आंखों के सामने एक साथ बहुत-सी बातें घूम गयीं। एक क्षण के लिए वह उत्तेजित हो उठा। वह मेधा से मिलने को बेचैन हो उठा था, लेकिन दूसरे ही क्षण उसे अपने उद्वेग पर शर्म महसूस हुई। क्या उसका प्यार पवित्र नहीं था? कई पुरानी घटनाएं उसकी यादों में कौंध गयीं, जब वह मेधा के साथ बिलकुल अकेला था, लेकिन फिर भी अपने-आपको बेकाबू नहीं होने दिया था। और अब फिर मेधा से मिलने की उसकी उत्सुकता बढ़ती जा रही थी।

उसे ताज्जुब हो रहा था कि इतने लम्बे समय तक वह मेधा के बिना कैसे जीवित रह सका। उसे मेधा के साथ बिताया हर क्षण याद आने लगा और पहले दिन की मुलाकात के समय व्यक्त की गयी भावनाएं भी उसे याद आने

लगीं। उसकी मुस्कराहट और आंसू, बातें और स्पर्श तथा अमर प्रेम की शानदार भावना! सब कुछ खत्म हो चुका था, छिन्न-भिन्न हो गया था। वह भावना और यह मुलाकात, शायद आखिरी मुलाकात! वह उससे एक बार और मिलना चाहता था, चाहे यह आखिरी बार ही क्यों न हो।

"मैं आ गयी हूं।" मेधा उसके पीछे खड़ी थी। वह पीछे से झुककर उसकी तरफ देख रही थी और उसके चेहरे पर मुस्कराहट बिखरी हुई थी। वह आश्चर्यचकित था! हां, यह वही थी, जो उसके सामने खड़ी थी, वही मेधा। उसने उसी पुराने ढंग से अपने बायें हाथ से पर्स पकड़ रखा था। उसके चेहरे पर वही चिर-परिचित मुस्कान थी और उसकी आंखें पहले की ही तरह नशीली थीं। वह कुछ गम्भीर हो गया। कितने पागलपन से वह उसका इन्तजार कर रहा था! वह उस नौजवान की तरह दुखी हो उठा था, जिसका प्रेम नया-नया होता है। अब ये सब बातें उसे शोभा नहीं देतीं। अब वह एक समझदार आदमी हो गया है। मेधा भी तो अब लड़की नहीं रही, अब वह किसी और की पत्नी है!

"आओ, हम कहीं चलें। यहां खड़े रहने से क्या फायदा!" मेधा ने चारों तरफ नजर डालते हुए कहा। इस विशिष्ट वाक्य ने उसे याद दिला दिया कि वह उसकी खास तरह की मराठी का कैसे मजाक बनाया करता था। वह हंस पड़ा। गम्भीरता के सारे विचार कहीं खो गये। वह भी उसके हंसने का मतलब समझ गयी थी। वह बोली, "अब मत हंसो, अब मैंने अपनी मराठी सुधार ली है। यह मत भूलो कि मैं एक कट्टर ब्राह्मण परिवार की बहू हूं।"

कालिज में वह उसकी मराठी को लेकर उसका बहुत मजाक बनाता था। बाद में वह उसका मजाक बनाते समय कभी-कभी उसके गुदगुदी भी कर देता था। यह सब याद करके उसका खून तेजी से बहने लगता, आसपास की इमारतें पिघलकर बादलों में बदल गयीं और सड़क ने लान का आकार ले लिया। वह उसके साथ-साथ कालिज के मैदान में चल रहा था और अपने स्लाइडिंग स्केल से उसके गुदगुदी कर रहा था। वह बार-बार मना कर रही थी और हंसते-हंसते उसकी आंखों में आंसू आ गये थे। और एक बार एक रेस्त्रां के एक स्पेशल कमरे में···

लेकिन वे रास्ता पार करने की जगह पर रुक गये, रेस्त्रां, लान और कालिज का मैदान, सब कुछ गायब हो गया। अब लम्बी-तगड़ी मेधा उसके पास खड़ी थी। उसे बेचैनी-सी होने लगी और वह अपने-आप को बिलकुल अकेला महसूस करने-लगा। जिसने उसे बहुत प्यार किया था, वह उसके पास थी, फिर भी वह अपने-आपको अकेला महसूस कर रहा था। लेकिन क्या वह उसकी थी? इस मुलाकात का क्या लाभ था? पिछले दस सालों में दुनिया पूरी तरह बदल चुकी थी।

उनके पुराने सपने और उनका खिलता हुआ प्यार, सब कुछ टुकड़े-टुकड़े हो गया था। भाग्य ने उन्हें एक-दूसरे से अलग कर दिया था—उन दोनों को जिन्होंने हरेक मुसीबत में एक साथ खड़े रहने की कसम खायी थी। यह सब भाग्य के कारण नहीं हुआ था। उसके धोखेबाज पिता ने ही यह सब किया था। जब वह अपनी ड्यूटी के सिलसिले में अहमदाबाद गया हुआ था, तो उसके पिता ने मेधा की शादी का एक झूठा निमन्त्रण पत्र उसके पास भेजा था। उस निमन्त्रण पत्र को पाकर वह स्तब्ध रह गया था। निराशा और परेशानी में उसने एक लड़की से शादी कर ली थी। और बाद में मेधा के पिता ने उसकी शादी एक अमीर आदमी से कर दी थी।

उसने अपने-आपको बेकाबू होने देने से रोका। मेधा उससे आज इसलिए मिली थी, मानो पिछले दस सालों की तकलीफों का मुआवजा देना चाहती थी। उन कड़वी बातों को याद करने से फायदा भी क्या था, उसने सोचा, और इन कुछ क्षणों को भी उन यादों में पड़कर नष्ट करने से क्या फायदा? अब उसने मेधा का हाथ पकड़ लिया।

"कहां चलोगी?" उसने पूछा। "काफी गरमी हो रही है, आओ कुछ आइसक्रीम खायेंगे···।"

"हां, चलो, आइसक्रीम खायेंगे। पूना में हम कितनी आइसक्रीम खाया करते थे···'लकी' में, 'कैत्रे' में और···"

उन्होंने सड़क पार की और एक रेस्त्रां में घुस गये। सड़क के बीच में वह उससे बिलकुल चिपट-सी गयी थी, लेकिन फिर अलग हो गयी थी। वह ऐसे ही करती है, उसने सोचने की कोशिश की। ओह, दस साल कितनी जल्दी गुजर गये! वह उसका स्पर्श आज भी फौरन पहचान सकता था।

वेटर आइसक्रीम ले आया था। ग्रामोफोन पर लता मंगेशकर का कोई रिकार्ड बज रहा था।

"लता मंगेशकर की आवाज हरेक जगह सुनने को मिल जाती है।" उसने कहा, "जानते हो, मेरी छोटी लड़की सोते समय क्या कहती है? वह कहती है, मां, तुम लोरी मत गाओ, लता का कोई रिकार्ड चढ़ा दो, मैं फौरन सो जाऊंगी!"

मेधा की बात सुनकर वह हंस पड़ा। और फिर अचानक बुदबुदाया, "मैं तुम्हारी लड़कियों को देखना चाहता हूं।"

"वे तुम्हें अच्छी नहीं लगेंगी। हालांकि वे अच्छी बच्चियां हैं, लेकिन इतनी ज्यादा अपने पिता के समान दिखती हैं···"

"तो क्या हुआ, अगर वे तुम्हारे पति की सूरत पर गयी हैं! मेरे मन में तो उसके खिलाफ कोई बात नहीं है। मैंने उसे कभी देखा भी नहीं है। वह कैसा दिखता है?"

"वह खूबसूरत है, वास्तव में बहुत अच्छा है!"

उसकी समझ में नहीं आ रहा था

कि वह क्या कहे ! पहले भी वह सुन चुका था कि मेधा को अच्छा पति मिला है।

तभी उसने अचानक पूछा, "और मैं···?"

"तुम बहुत स्वीट हो···"

"स्वीट ?"

"हां, तुम बहुत स्वीट हो ! तुम मेरे हो !"

वह उससे पूछना चाहता था कि क्या तुम्हारा पति तुम्हारा नहीं है ? मैं तो अब तुम्हारे लिए एक अजनबी आदमी से ज्यादा कुछ नहीं हूं ! लेकिन उसने कुछ नहीं पूछा। कल उसने जो कुछ रोते-सिसकते हुए कहा था, वही सब कुछ वह आज शान्तिपूर्वक दोहरा रही थी।

ग्रामोफोन से लता की दिल को छू जाने वाली आवाज आ रही थी। इसने उसे पिछली यादों के जंगल में भटका दिया था।

अचानक वह बोला, "तुम्हें याद है न, एक बार कालिज की सोशल गैदरिंग में तुमने गाना गाया था।"

"और तभी से तो तुम मुझे चाहने लगे थे। वह कौन-सा गाना था ?"

उसने उस गाने के बारे में उसे बताया।

"अब यह गाना इतना पुराना हो गया है !" उसने कहा, "लोग अब इस पर हंसेंगे···।"

"लेकिन मैं अब भी इसे सुनता हूं और तब···"

"मैं जानती हूं, मेहरबानी करके उन पुरानी यादों को ताजा मत करो। हम कल उन्हीं यादों के बारे में तो बातें करते रहे थे। और बात करते-करते कितना रोये थे···!"

दोनों खामोश हो गये थे। वे आइस-क्रीम खा चुके थे। वे चुपचाप बैठे थे। उसे लगा कि रेस्त्रां कालेज के स्टेज में बदल गया था और मेधा गा रही थी। तालियों की गड़गड़ाहट हाल में गूंजने लगी थी। जिस लड़की ने इतने सारे लोगों के सामने बेहिचक गाना गाया था उसे प्रेम ने पहाड़ियों के एकान्त में भी गूंगी बना दिया था। तब आंसुओं, धूप-छांह और आशा-निराशा का खेल शुरू हुआ था। प्रेमपत्रों तथा गुप्त मुलाकातों का दौर चला था।

बेयरा बिल ले आया था और उसने बिल के पैसे चुका दिये थे। वे दोनों रेस्त्रां के बाहर आ गये। वे चुपचाप लेकिन एक-दूसरे के करीब चल रहे थे। सूरज बहुत तेज चमक रहा था और समुद्र की गर्जन सुनायी पड़ रही थी। अनजाने ही वे समुद्र की तरफ चले गये। उसने साड़ी से अपना सिर ढंक लिया। उसने अपने गले में एक रूमाल बांध लिया था।

"मेधा···।"

"हां, अरु···।"

"एक लम्बे समय तक तुमने बम्बई नहीं देखी थी, और तुमने समुद्र भी नहीं देखा था, याद है न ? पूना में हम एक

झरने के किनारे बैठा करते थे। पानी को देखकर तुम्हारी इच्छा होती थी कि तुम अपने पांव उसमें डुबा दो। एक बार हम पार्वती हिल के पीछे एक छोटे-से झरने के पास बैठे थे। मैं तुम्हें अपने कोंकण समुद्री किनारे के बारे में बता रहा था। रात का अंधेरा चारों तरफ फैलने लगा था और फिर भी···"

"कहते हैं कि आजकल तो पार्वती हिल पर लड़कियों के साथ छेड़छाड़ की जाने लगी है।" उसने बीच में ही बात काटते हुए कहा, "हमारे जमाने में तो वह जगह बहुत अच्छी और सुरक्षित थी।" सीमेण्ट की मुंडेर पर बैठती हुई वह बोली, "यहां पर मैं अपने पांव पानी में कैसे डुबा सकती हूं? पानी कितनी दूर है, और ये चट्टानें भी कितनी बड़ी हैं···!" उसने नीचे झुककर देखा और फिर अपनी पीठ समुद्र की तरफ घुमाकर सड़क की तरफ मुह करके बैठ गयी। उसकी बातें और व्यवहार ने उसे परेशानी में डाल दिया था। उसने पार्वती हिल की उन प्रिय यादों को कुचल दिया था। जब कभी भी वह समुद्र देखता था, उसे मेधा याद आ जाती थी। लेकिन आज वह समुद्र की तरफ अपनी पीठ करके बैठी थी। क्या यह उसकी मेधा थी? वही पुरानी मेधा?···चट्टानों पर मचलती हुई लहरों को देखकर उसे एक और बात याद आ गयी। वह उसके पास ही बैठता हुआ बोला, "क्या तुम्हें याद है···?"

"नहीं, मेहरबानी करके पुरानी यादों के जंगल में मुझे मत भटकाओ! मेरा दिल उन्हें याद करके टुकड़े-टुकड़े होने लगता है। इससे कोई फायदा नहीं



है···।" उसने बात बीच में ही काट दी।

"कोई फायदा नहीं है ?" वह चिल्लाया, लेकिन फिर अपनी बाहें उसकी कमर में डालकर वह बोला, "फिर तुम मुझ से मिलने क्यों आयी हो ? तुम मुझे कल क्यों मिली थीं ?"

उसके बंधनों से अपने-आपको छुड़ाती हुई वह बोली, "मुझे क्या पता था कि तुम मुझे यहां मिल जाओगे···मैं तो अपनी एक मित्र की शादी में आयी थी, और मौके की बात है कि तुम भी यहां मौजूद थे। इतने बड़े शहर में हम इस तरह एक-दूसरे से मिले, मानो यह सब पहले से तय हो।"

"लेकिन फिर कल तुमने मुझे देखते ही अपनी सहेलियों का साथ क्यों छोड़ दिया ? तुम मेरे साथ क्यों आयीं ? तुमने मुझे आज क्यों बुलाया ?"

एक क्षण के लिए वह उसकी बात सुनकर स्तब्ध रह गयी। तभी उनके सिर के ऊपर से दो हवाई जहाज शोर मचाते हुए गुजर गये। उसने अपना गला साफ करते हुए कहा, "मेहरबानी करके इस तरह बात मत करो। मैं तुम्हें इसलिए एक तरफ ले गयी थी, क्योंकि मैं जी भर-कर तुम्हें देख लेना चाहती थी। तुम्हें अपनी आंखों में समा लेना चाहती थी। तुम मुझे दस साल बाद मिले थे। मैं किस तरह अपने को रोक सकती थी ? मैं तुम्हारी नाराजगी दूर करना चाहती थी, तुमसे माफी मांगना चाहती थी, तुममें साहस भरना चाहती थी, तुम्हारे आंसू पोंछना चाहती थी···।" बोलते-बोलते उसका गला भर आया था। उसने अपने आंसू पोंछ डाले और समुद्र की तरफ देखती हुई बोली, "कल हमने झूठी आशाओं के सपने देखे थे। हमारे दिलों में पुरानी यादों के घाव ताजा हो गये थे। आज मैं उस सबको खत्म कर देना चाहती थी। मैं तुम्हारे पास इसलिए आयी थी कि हम एक-दूसरे से शान्ति से जुदा हो सकें।"

उसने घूमकर रूखेपन से कहा, "तो तुम मुझे सान्त्वना बंधाने आयी थी। तुम मुझे यह बताने आयी थीं कि अब हमारा मिलना बेकार है, तुम अपने घर, पति और बच्चों के साथ सुखी हो ! यह सब तुम्हें कहने की जरूरत नहीं है कि मुझे अपनी जिन्दगी एकान्त में ही बितानी है।"

"इतने रूखे मत बनो, अरु।···"

मेघा के आंसुओं ने उसके दिल को पिघला दिया। "यह मैं जानता हूं !" उसने कहा, "मैं जानता हूं कि भविष्य की किसी भी आशा के सपने देखना बेकार है। इसलिए तो मैं पुराने दिनों की यादों में अपने-आपको खो देना चाहता था···।"

"तुम ठीक कहते हो," नीचे देखती हुई बोली, "बोलो, अब मैं नाराज नहीं होऊंगी।"

एक क्षण के लिए वह चुपचाप बैठा रहा। उसका दिल दर्द से फटा जा रहा था। उसके मन में एक अजीब संघर्ष चल रहा था। अनजाने ही वह बोला,

"क्या तुम मुझे अब भी पहले ही की तरह प्यार करती हो ?"

उसने अपनी नजरें ऊपर उठायीं। एक मुस्कान उसके चेहरे पर फैल गयी।

"लेकिन यह कोई याद नहीं है ! यह कोई पुरानी बात नहीं है !"

वह भी हंसने लगा और उसके और करीब खिसक गया।

"बताओ न···वास्तव में," उसने कहा, "क्या तुम मुझे बहुत प्यार करती हो ?"

"अरु, मैं तुम्हें बहुत ज्यादा प्यार करती हूं, बहुत ज्यादा···"

एक क्षण के लिए दोनों चुप रहे। लेकिन तभी मेघा उठ खड़ी हुई और समुद्र की तरफ देखती हुई बोली, "क्या इस समुद्र के सामने मैं वे सभी पुरानी बातें दोहराऊं, जो मैंने दस साल पहले एक झरने के किनारे बैठकर कही थीं ? क्या तुम सिर्फ शब्द सुनना चाहते हो ? या फिर मैं तुम्हें यह दिखाऊं कि किस तरह मैं तुम्हारी पूजा करती रही हूं, यह जानते हुए भी कि अब हम कभी नहीं मिल सकेंगे। आज भी वह पवित्र भावना मेरे दिल में तुम्हारे लिये सुरक्षित है जो शुरू में पैदा हुई थी। सब परेशानियों के बावजूद, नया घर बसाने के बाद भी तुम्हारे लिये मेरा प्रेम बहुत महान् है। यह सब मैं तुम्हें कैसे बताऊं ?"

उसकी आवाज कांपने लगी थी। लेकिन उसने अपने आंसुओं को काबू में कर लिया था। उसकी आंखों में कुछ-कुछ गुस्सा झलक आया था और वह क्षितिज की तरफ इस तरह घूर रही थी मानो कोई उसके प्यार के खजाने को लूटने आ रहा था। वह एक शेरनी की तरह सावधान हो गयी थी। वह एक देवी के समान पवित्र दिख रही थी।

वह सहारा देने के लिए उसे पकड़ना चाहता था। वह उसके पास ही खड़ा रहा। फिर उन्होंने एक-दूसरे का हाथ पकड़ लिया और चुपचाप खड़े रहे। कुछ क्षण बाद वह बोला, "आओ, कहीं चलें। यहां तो बहुत गरमी है।"

वह चुपचाप उसके पीछे-पीछे चलने लगी। वह आगे बढ़ा चला जा रहा था। उसकी इच्छा हो रही थी कि वह सीधा आगे बढ़ता चला जाय और समुद्र को लांघकर मेघा के साथ क्षितिज में खो जाय। उसके असीम प्रेम की भावना ने उसे अस्त-व्यस्त कर दिया था। वह इन दस सालों को शक, निराशा, घृणा, शत्रुता और असहायता की भावना के बल पर काट सका था। लेकिन अब ? इस निराशा में ही उसने शादी भी कर ली थी, लेकिन मेघा ने कभी अपना सन्तुलन नहीं खोया। अपनी गृहस्थी के झंझटों के बीच भी वह मुझे नहीं भूली। बाकी सब तो अब बहुत आसान है, उसने सोचा, दस साल की अवधि को भूल जाना चाहिये और जो काम अभी तक करने से रह गया है उसे खत्म कर डालना चाहिये। वह रुक गया और जेब टटोलकर अपने कमरे की चाबी देखने लगा। उसका

होटल अगले ही मोड़ पर था और उसका कमरा पांचवें माले पर था। कमरा काफी बड़ा, शान्त और साफ-सुथरा था। दो आदमियों के लिए एक एकान्त कमरा !

"हम कहां जा रहे हैं ?"

वह रुक गया और बिना उसकी तरफ देखे बोला, "हम सड़क पर कब तक भटकते रहेंगे ? अभी तुम्हारे लौटने में भी एक घण्टा बाकी है। हम उस होटल में जायेंगे। मैंने वहां एक कमरा ले रखा है।"

"कमरा ?" थोड़ा पीछे को हटती हुई मेघा बोली। वह मेघा के इस तरह पूछने और उसकी आंखों के भाव पढ़कर आश्चर्यचकित रह गया था। उसे यह बात बुरी लगी। वह उसे सान्त्वना देता हुआ बोला, "क्यों ? क्या तुम्हें मुझसे डर लगता है ? आओ···।"

"डर ?" वह बहुत रूखेपन से हंसी, "मैंने हमेशा तुम पर विश्वास किया है। मुझे तुमसे भला क्यों डर लगेगा ?" फिर वह जोर से हंसती हुई बोली, "ओह, वह देखो, सामने एक बहुत अच्छी जगह है। वह जो नयी बिल्डिंग बन रही है, उसका ग्राउण्ड फ्लोर बन चुका है। वहां पर छाया भी है और एकान्त भी।"

उसने सड़क पार कर ली। रेत के ढेर के ऊपर से चलती हुई वह उस बिल्डिंग की तरफ गयी। ईंटों और पत्थरों के टुकड़े चारों तरफ बिखरे हुए थे। पांच-छह कमरे बन चुके थे। पैड़ियां बनायी जा रही थीं। वह चबूतरे पर चढ़ गयी और अपना रूमाल बिछाकर एक जगह बैठ गयी। वह अभी तक सड़क के दूसरे किनारे पर खड़ा था। मेघा उसे खुशी में आवाज देकर बुलाने लगी।

वह खुशी बनावटी थी, केवल दिखावा। वह जानता था कि उसने बहुत चालाकी से उसके कमरे में जाने की बात टाल दी थी। उसने अपने-आप पर नियन्त्रण रखा था और बहुत बुद्धिमत्ता से काम लिया था, और अब वह प्रसन्नता जाहिर कर रही थी, जिससे वह नाराज न हो जाय। और यही मेघा कभी कहा करती थी, 'खुले में क्यों बैठते हो ? चलो, हम कहीं दूर चलें जहां हमें कोई भी न देख सके।' यही मेघा कभी चाहती थी कि वह उसके साथ उसके गांव चले, क्योंकि वहां वे उसकी दादी को धोखा दे सकते थे और बड़े घर के किसी भी कमरे में बैठकर बातचीत कर सकते थे। यह नादान, नासमझ प्रेम की पूर्णता प्राप्त करने को उत्सुक रहती थी, अपने प्रेमी से एकाकार हो जाने को बेचैन थी। लेकिन उस समय उन्हें मौका नहीं मिला था। अनजाने ही उन्होंने अपने-आप पर काबू कर लिया था। और आज जबकि हरेक बात उनके हाथ में है, वह इतनी बदल गयी थी ! वह चुपचाप उसकी तरफ चला गया, लेकिन उसने किसी तरह का भाव प्रकट नहीं किया।

"क्या तुम नाराज हो ?" उसने पूछा।

उसने नाराजगी से सिर हिलाया

और उसके पास ही बैठ गयी, "अरु, क्या तुम्हें अपनी पत्नी के बिना बहुत तकलीफ होती है? वह कैसी थी? खूबसूरत? तन्दुरुस्त? प्यारी?"

एक क्षण में ही उसके दिमाग से बुरे खयाल न जाने कहां गायब हो गये। सीमेण्ट की कंक्रीट से बाहर निकली हुई लोहे की छड़ों को घूरता हुआ वह बोला, "वह तो चली गयी। वह मेरी जिन्दगी में कुल डेढ़ साल के लिए आयी थी और फिर चली गयी। ऐसा लगता है कि यह सब जैसे कोई सपना था। मैं कभी भी उसके साथ ज्यादा घनिष्ठता का व्यवहार नहीं कर सका था। तुम्हारी यादों के मुआवजे के रूप में मैं उसका बहुत आदर किया करता था, लेकिन मैं अपने-आपको उसमें कभी भी नहीं खो सका। जब मेरी यह हालत है, तो तुम्हारी क्या हालत होगी!"

उसने कहा, "शुरू-शुरू में तो बहुत परेशानी महसूस करती थी। अगर तुम्हारे मिलने की जरा-सी भी उम्मीद मुझे होती, तो मैं तुम्हारा जरूर इन्तजार करती। मैं अपने उस पिता के पास नहीं रहना चाहती थी, जिसने हमारे प्रेम को टुकड़े-टुकड़े कर दिया था। इसी घृणा की भावना के कारण मैं विवाह-बंधन की आग में कूद पड़ी। उसके बाद से मैं एक बार भी अपने माता-पिता के पास नहीं गयी। मुझे डर था कि कहीं तुम न मिल जाओ। मैं अपने पिता का मुह भी नहीं देखना चाहती थी। जब वे अपनी मृत्युशैया पर पड़े थे तब भी मैं उन्हें देखने नहीं गयी··· मुझे उनसे घृणा थी। लेकिन धीरे-धीरे मैंने महसूस किया कि तुमसे नफरत करना मुश्किल है। अगर तुमने मुझे धोखा दिया होता और मेरे प्यार को ठुकराया, होता तब भी मेरा तुम्हारे प्रति प्रेम कम नहीं हो सकता था। खाना बनाते समय, प्रार्थना करते समय, खाना खाते समय, बिस्तर बिछाते समय मुझे तुम याद आते थे।"

"क्या तुम्हारे पति को इस बात का पता नहीं चला?"

"मैंने ही उन्हें एक बार सरसरी तौर पर इस बारे में बता दिया था। वह यह जानकर नाराज हुए थे, लेकिन इस मामले में उन्होंने कोई ज्यादा तहकीकात नहीं की थी। वे सोचते हैं कि पढ़ी-लिखी लड़कियां अक्सर शादी से पहले प्रेम के चक्कर में पड़ जाती हैं। लेकिन यह सब ऊपरी होता है। वे शादी के बाद सब कुछ भूल जाती हैं। वे अपने नये घर में खो जाती हैं। हो सकता है कि उनकी बात सही हो, लेकिन मैं तुम्हें नहीं भूल सकी। मेरा शरीर जरूर उनके साथ था, लेकिन मेरा दिल तो हमेशा तुम्हारे चारों ओर ही चक्कर काटता रहा।"

"मेधा! मेधा!" उसने आवेश में आकर उसके कांपते हुए शरीर की ओर देखा। वह उसके असामान्य प्रेम के बारे में जानकर विचलित हो उठा था। जब उसे इतना महान् और शानदार प्रेम प्राप्त है, तो फिर वह समाज के बन्धनों की

क्यों परवा करे ? और वह इन भागते हुए क्षणों का आनन्द क्यों न ले ? ये क्षण फिर कभी वापस नहीं आयंगे । उसने मेधा की तरफ देखा । जिन्दगी के तूफान में पड़कर उसका शरीर पीला पड़ गया था, फिर भी वह पहले-जैसा ही आकर्षक था । वही गाल, कानों के पीछे के घुंघराले बाल, गालों का गड्ढा और नोकीली ठुड्डी । कई बार अपना यह शरीर वह उसे सर्मापित करने की उत्सुकता दिखा चुकी थी । प्रेम की उपासना के लिए वह इसे एक आवश्यक संस्कार मानती थी । गांव की वह रोबीली लड़की इस बात से कभी नहीं शर्माती थी । लेकिन वह खुद अपने शहरी संस्कारों के कारण इन बातों से डरता था । वह उसके परिणामों से डरता था । उसने हमेशा इस बात को टालने की कोशिश की थी ।

लेकिन आज उसे कंपकंपी छूट रही थी । उसके शरीर में एक अजीब-सा रोमांच हो रहा था । उसने उसका हाथ अपने हाथों में ले लिया और कहा, "आओ, मेधा, होटल चलें । डरो मत । मेरा कमरा बहुत अच्छा है । हम बहुत कुछ बर्दाश्त कर चुके हैं । अपने अगाध प्रेम के बावजूद हम एक-दूसरे से जुदा हो गये । कभी एक नहीं हो सके !"

वह जाने को ही था । लेकिन उसे पत्थर की तरह निश्चल बैठी देखकर वह रुक गया । उसकी आंखें बहुत दूर कुछ देखने की कोशिश कर रही थीं । उसका चेहरा चमकने लगा था, और उसका शरीर अब भी पत्थर की तरह निश्चल था । और तभी जैसे किसी मूर्ति में से शब्द फूट पड़े, "अब तुम मुझे कहां ले जा रहे हो ? तुम मेरी सबसे कीमती चीज, मेरा दिल ले चुके हो !"

वह खाली शब्दों से अब तक थक चुका था । जैसे-जैसे समय गुजर रहा था, उसकी बेचैनी बढ़ती जा रही थी । उसने उसके दोनों कंधे पकड़कर कहा, "हां, इसी लिए तो मैं तुम्हें ले जाना चाहता हूं । यह मेरा अधिकार है । हम इस तरह क्यों रहें ? हम एक-दूसरे को चाहते हैं !"

"हम एक-दूसरे के हैं और हमेशा रहेंगे, लेकिन केवल दिमाग में । केवल उसी मायने में जहां तक दिल का सम्बन्ध है । हम शरीर में भी एक कैसे हो सकते हैं ? यह इस जीवन में असम्भव है ।"

"एक साथ रहना, साथ-साथ प्यार करना चाहे सम्भव न हो, लेकिन···।"

"हम यह नहीं करेंगे !" उसने कहा । ऐसे दृढ़ शब्द सुनकर उसने उसके कन्धों से अपने हाथ हटा लिये । लेकिन मेधा ने उसके हाथों को अपने हाथ में ले लिया और बोली, "मैंने एक घर बसा लिया है । चाहे मैं उसे चाहूं या न चाहूं, मुझे अपने पति और बच्चों के प्रति अपने कर्तव्य को वफादारी से निभाना होगा । मेरा दिल तुम्हारा हो सकता है, लेकिन मेरा शरीर···"

उसने उसके हाथ एक तरफ को झटक दिये और नफरत की नजर से

उसकी तरफ देखता हुआ बोला, "फिर यह प्रेम का दिखावा क्यों ? तुमने मुझे मिलने के लिए क्यों बुलाया ?"

"यह मुलाकात एक-दूसरे को साहस देने, हिम्मत बंधाने के लिए है, जिससे हमारे शरीर अपने-अपने रास्ते पर चल सकें। इस रोने-धोने और दिखावे का यही कारण है। हालांकि मेरा शरीर मेरे पति के साथ बंधा हुआ है, मैंने अपना दिल उससे भी पहले तुम्हें दे दिया था। भगवान भी उसे तुमसे अलग नहीं कर सकता। लेकिन जिसने मुझे जन्म दिया था, उसने मेरे शरीर को तुम तक नहीं पहुंचने दिया। अब तुम्हें इसे नहीं छूना चाहिये, इस पर तुम्हें अपना अधिकार नहीं जताना चाहिये। अरु, इस दुनिया में शरीर का ही ज्यादा महत्त्व है, हृदय की कोई परवाह नहीं करता। इसे दबाना पड़ता है, मारना पड़ता है। शुरू में मुझे यह सब बहुत मुश्किल महसूस हुआ। मैं जिन्दगी से बचना चाहती थी। लेकिन धीरे-धीरे दिमाग और शरीर अपने-आप व्यवस्थित रूप से अलग-अलग हो गये। दिमाग हमेशा तुम्हारे बारे में ही सोचने का आदी हो गया और दूसरी तरफ शरीर ने एक नये घर को आकार प्रदान किया। मेरा परिवार और पति मुझसे सन्तुष्ट था···और फिर मेरे बच्चे···मेरे जीवन का फल। वे मेरे शरीर से ही पैदा हुए और मेरे शरीर पर ही पले। मैं अपने शरीर का महत्त्व कैसे भूल सकती हूं ? यह ठीक है कि मेरी लड़कियों को इस बात का पता कभी नहीं चलेगा, लेकिन क्या वे पसन्द करेंगी कि उनकी मां चरित्रहीन हो ? बताओ न।"

मेघा सीढ़ियों की रेलिंग का सहारा लेकर खड़ी हो गयी। वह उसकी ओर देख रहा था। पहले वह उसके प्रेम की चमक से चौंक उठा था और अब वह उसके स्त्रीत्व की पवित्र चमक से स्तब्ध हो गया था। एक ओर मेघा के दिल में बेमिसाल प्रेम था और दूसरी ओर वह नैतिकता के सामान्य नियमों को भी नहीं भूली थी। उसने महसूस किया कि वह बहुत महान् है। वह अपने-आपको बहुत नीच और गिरा हुआ महसूस करने लगा। धीरे-धीरे उसने मेघा के व्यवहार के औचित्य को समझ लिया था। उसने उससे पहले कभी कोई चीज इसलिए नहीं मांगी थी, क्योंकि यह एक गन्दी बात होती। और अब वह चीज मांगना पाप होगा। उसने अपने कमरे की चाबी अपनी जेब में रख ली और बोला, "मेघा, जो कुछ तुम मुझे दे चुकी हो वही वास्तव में बहुत मूल्यवान है···तुम सोच रही होंगी कि मैं कितना नीच हूं !"

"नहीं, मैं तुम्हारे व्यवहार को समझ सकती हूं ! फिर तुम्हारा परिवार टूट चुका है। तुम ऐसा कर सकते हो। लेकिन मैं···अगर मैं भी तुम्हारी ही तरह स्वतन्त्र होती, तो शायद मैं तुम्हारे पास आ जाती। और शायद मैं तुम्हारे पास न भी आती। यह मेरी लड़कियों पर निर्भर करता।"

दोनों ही खामोश थे। वह खड़ी थी



और अरु बैठा था। सूरज छिपने लगा था और समुद्री हवा तेजी से बह रही थी। बिना कुछ कहे उसने अपना रूमाल मेधा के हाथ में पकड़ा दिया। मेधा ने अपने आंसू पोंछ डाले और फिर अपने पर्स में से एक छोटा-सा शीशा निकालकर अपने बाल वगैरह ठीक किये। उसने अपने पर्स से एक लौंग निकाली और थोड़ी उसे दी और बाकी उसने अपने मुंह में डाल ली। वे ट्रैफिक को देखते रहे, फिर काफी देर तक समुद्र की तरफ देखते रहे और एक-दूसरे को समुद्र में तैरते हुए जहाज दिखाते रहे।

बाद में वह अचानक बोली, "अब हम चलें?" वह स्तब्ध हो गया था। समय बीत चुका था। उसका चेहरा बहुत उदास हो गया था। उसे महसूस हुआ कि उसका दिल बैठता जा रहा था। आस-पास का वातावरण उसे बहुत डरावना लगने लगा। बहुत कोशिश करके वह बोला, "अच्छा···!"

दोनों चलने लगे।

"मैं कल अपने घर वापस जा रही हूं।" उसने कहा।

"अब क्या हम फिर नहीं मिल सकेंगे ?"

"क्यों नहीं ? लेकिन हम जान-बूझकर इसके लिए कोई कोशिश नहीं करेंगे।"

"मुझे उम्मीद है कि तुम खुश रहोगी···।"

"हां, और मैं चाहती हूं कि तुम भी खुश रहो, कम से कम मेरे लिए।"

वे एक रेस्त्रां के पास से गुजर रहे थे। "रुको," वह बोला, "मैं जानता हूं कि चाकलेट के बिना तुम्हारा काम नहीं चलता।"

वह चाकलेट खरीद लाया था। वह मुस्कराकर बोली, "क्या तुम नहीं जानते, मैं इस तरह कभी नहीं खाती ?"

उसे एक बार फिर महसूस हुआ कि उसके गले में कुछ अटक गया था। उसने थोड़ी चाकलेट कुतर ली और बाकी उसकी तरफ बढ़ा दी। मेधा ने चाकलेट मुंह में ले ली। दोनों मुस्कराने लगे। मुस्कराते हुए वे आगे बढ़े।

चर्चगेट के चौराहे पर वे एक-दूसरे से बिदा हुए। दो मुस्कराते हुए चेहरे और चार आंखें, जिनमें आंसू भरे हुए थे।

मेधा जिसने प्रेम का अनमोल खजाना बिखेर दिया था, अपने प्रेमी को पीछे छोड़कर एक गृहणी की तरह जल्दी से आगे बढ़ गयी। उसकी आंखें अब भी मेधा का पीछा कर रही थीं, और उसका शान्त मस्तिष्क अनजान आदमियों की भीड़ में घुटन महसूस कर रहा था।

●

जिन्दगी में कोई और हसरत···?

पाकिस्तान के एक कालिज का नयी उम्र का छोकरा अपने साथियों से कह रहा था, "मैं पाकिस्तानी पैदा हुआ, पाकिस्तानी मरूंगा भी।"

करीब से एक बुजुर्ग गुजर रहे थे। रुककर उन्होंने उस छोकरे से कहा, "क्यों, बेटा, जिन्दगी में तुम्हारी और कोई हसरत नहीं है ?"

डिब्बे में मेंढक

जन्तु-विज्ञान के एक प्राध्यापक महोदय शरीर रचना-शास्त्र पर बोल रहे थे, "मेरे हाथों में यह डिब्बा है। इसमें एक मेंढक है, जिसे डिसेक्ट करके मैं आप लोगों को उसके स्नायुमण्डल के सम्बन्ध में बताऊंगा।"

प्राध्यापक महोदय ने डिब्बा खोला, तो उसमें से दो टोस्ट तथा एक उबला हुआ अण्डा निकला। विद्यार्थियों से क्षमा मांगते हुए उन्होंने कहा, "मेरा खयाल था, लंच में मैं टोस्ट और अण्डा खा चुका हूं।"

कैथी

प्रभाकर माचवे

'कैथी।'

'हां, हसन।'

'तुम सचमुच मुझसे प्रेम करते हो?'

'मैं तुम्हारे लिए अपना सब कुछ देने को तैयार हूं?'

'नहीं, हसन, यह बात सही नहीं है।'

'तुम्हारे पास क्या सबूत है?'

'अगर ऐसा होता, तो तुम मुझे गलत चीज के लिए इतना इसरार नहीं करते।'

'कौन-सी गलत चीज?'

'तुम मुझे अपना धर्म बदलने के लिए क्यों कह रहे हो, हसन?'

'कैथी····कैथी, तुम कुछ समझती नहीं हो।'

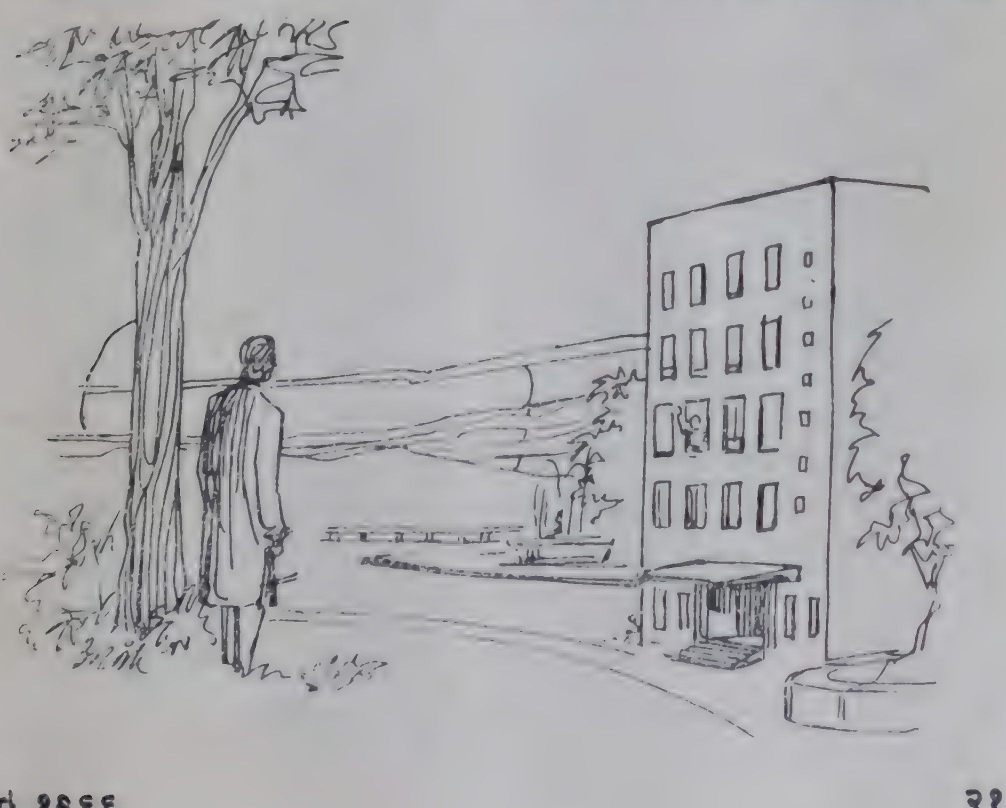
'मुझे कुछ नहीं समझनावमझना है। मैं जानती हूं, तुम मुझे फंसा रहे हो!'

'क्या तुम्हें अपना धर्म मुहब्बत से भी ज्यादा प्यारा है?'

'क्या तुम्हें अपनी मुहब्बत धर्म से भी ज्यादा प्यारी नहीं है?'

···और बात यहीं आकर रुक गयी।

दक्षिण अमरीका के एक विश्वविद्यालय के अहाते में मैं शाम को टहलने जा रहा था। धूप वर्षा के बाद मुलायम



जान पड़ रही थी कि सहसा मैंने किसी को उस दक्षिण-पूर्वी और सुदूर-पूर्वी संस्कृति अध्ययन विभाग की पत्थर की पक्की इमारत की तीसरी मंजिल की खिड़की से इशारा करते हुए देखा। वह मुझे बुला रही थी। वह कैथी ही थी। विभाग में एक टाइपिस्ट के नाते मुझसे वह परिचित थी। वह टूटी-फूटी उर्दू भी बोल लेती थी। इसका नाम मुझे यों याद रहा था कि एक बार नेपाल से आये एक विद्यार्थी बिहार की पुरानी बोलियों और लिपियों के बारे में उसके सामने बात कर रहे थे। मैंने कहा था, 'वहां तो हिन्दी ही चलती है। लिपि भी हमारी देवनागरी ही है।' तो वे सहसा बात काटकर बोल पड़े थे, 'नहीं, नहीं, पुरानी बिहारी 'कैथी' लिपि में लिखी जाती थी।' अपनी गरदन मोड़कर इस छोटी-सी, मिश्रवर्णीय लड़की ने जिसके मुंह पर बहुत से मुंहासे थे, टाइपराइटर की टप-सर्र रोककर पूछा, 'मेरे बारे में आप कुछ कह रहे हैं? अपनी भाषा में क्यों गाली दे रहे हैं। सीधे कहिए न अंगरेजी में...।'

मैंने सफाई दी थी, 'नहीं, नहीं, यह आपका नाम नहीं। एक पुरानी लिपि की हम बात कर रहे हैं। भारत में एक जाति थी मुन्शियों की, काणिकों की जो 'कायथ' कहलाते हैं। उनकी पुरानी लिपि का नाम था 'कैथी', जिसमें बही-खाते लिखे जाते थे।'

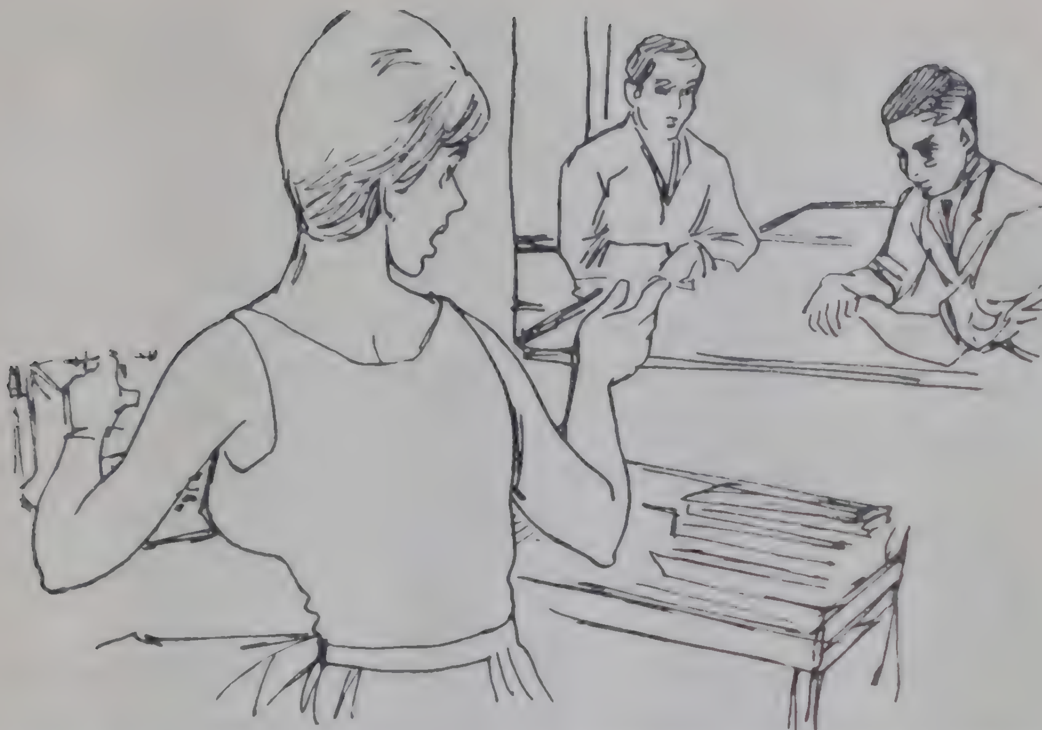
'ओह, मुझे गलतफहमी हुई। माफ कीजिए।' वह मुस्करा दी थी। और फिर गरदन झुकाकर काम में जुट गयी थी।

वही कैथी थी जो उस बड़ी गम्भीर, संजीदा, भूरी, डरावनी-सी इमारत की तीसरी मंजिल की खिड़की से बुला रही थी।

मैं सड़क पर ठिठक गया। मैंने आस-पास मुड़कर देखा कि शायद किसी और को बुला रही हो, क्योंकि मुझे विश्वास नहीं हुआ कि इतने कम परिचय के बल पर वह क्यों और कैसे मुझे ही बुला रही है?

वर्षा के बाद की धुली धूप उस इमारत पर चढ़ी हुई अजब रंग की बेल को और रहस्यमय बना रही थी। चौकोर खिड़की में कैथी ही थी—वही काली-सी आंखें, काले बाल, लम्बी नाक, मुंह पर वैसे ही मुंहासे और वही मोतिया रंग का स्कर्ट।

मैंने देखा अपनी कलाई घड़ी में। शाम के साढ़े छह बजे थे। और इतनी देर तक यह यहां इस दफ्तर में क्या कर रही थी? समझ में नहीं आया। भीतर गया तो सब सूनापन। कोई नहीं था। स्वचालित 'एलिवेटर' (लिफ्ट) से तीसरी मंजिल पर पहुंचा और उस दिशा में गया। बाहर लिखा था : 'इब्रानी और अरबी भाषा विभाग'। वहां आधा दरवाजा खुला था और कैथी अपनी मेज के पास बहुत से कागज ट्रे में लिये टाइप की मशीन के पास खड़ी थी। खड़ी कम, झुकी अधिक लगती थी। ऐसा जान पड़ता था कि वह अब गिर पड़ेगी।



मेरे भीतर जाते ही एक दबी हुई सिसकी मुझे सुनायी दी । वह जार-जार रोने लगी ।

मैं सकते में । आखिर एक कम-परिचित लड़की इस तरह रोना शुरू करे, तो क्या किया जाता है ? मैंने उसे शब्दों से, फिर पीठ थपथपाकर, फिर आंखें पोंछकर कुछ सहानुभूति दी । कहा, "तुम्हें क्या दुःख है, कैथी ?"

"मैं यहां कुछ नहीं कह सकती । हम बाहर चलें ।"

वह जैसे सहमी हुई थी । लगता था, जैसे कोई नर-पिशाच उसके पीछे लगा हुआ है, और वह उसे कच्चा खा जायेगा ।

हम बाहर निकल आये । कुछ दूर जाकर इण्टरनेशनल होस्टल के पार वाले लान पर बैठ गये । साथ में मैंने दो काफी के कागज वाले कप ले लिये थे । उन्हें दो घूंट पीकर वह कुछ प्रकृतिस्थ हुई । उसने धीमे-धीमे बोलना शुरू किया, "डाक्टर, मैं आपके देश से और पड़ोसी देशों से प्रेम करती हूं । मैं सारे पूर्व से प्रेम करती हूं । सम्भव है, यह मेरे रक्त में ही हो । मेरी मां यहूदी थी । पिता शायद इटली के थे । मेरा बचपन से पालन-पोषण मां ने ही किया । हम अपने सैनेगाग में प्रार्थना करने जाते । हमने 'तोरा' की पूजा करना सीखा । रबाय् हमारे पुजारी हैं, जिनके लिए मेरे मन में नितान्त आदर था । हम कट्टर यहूदी बन गये, विशेष रूप से जब मेरा बाप जरमनी से निष्कासित हुआ, हिटलर के राज्यकाल में । मुझे छोटी-सी उम्र में ही मां के साथ इस देश अमरीका में

आना पड़ा। मां ने बड़े कष्ट में जीवन बिताया। पता नहीं कितने होटलों में उसे तश्तरियां साफ करनी पड़ीं।"

फिर वह थोड़ी देर के लिए चुप हो गयी। उसकी आंखें कहीं सूने में खो गयीं। मां की याद ने उसे अभिभूत कर दिया। मैंने चित्रकार रूआ के चित्रों की एक प्रदर्शनी हाल में देखी थी। उसमें होरेस के एक वाक्य के साथ एक चित्र था। वह वाक्य मेरी बुद्धि और भावना की सम्मिलित आंखों के सामने जैसे उभरकर नाच रहा था : 'दुनिया की कोई भी माता युद्ध नहीं चाहती।'

कैथी को मैं देख रहा था। ···मेरी आंखों के सामने मेरे गांव की उस गरीब अधपढ़ी बुढ़िया का चेहरा चमक रहा था, जिसने १९४० में सेना पर जाते हुए अपने इकलौते बेटे को टोका था। मेरी आंखों के सामने 'वार एण्ड पीस' फिल्म की भयग्रस्त, आग की लपटों में चीखती रूसी स्त्री की आंखें दिखायी दे रही थीं।

बर्फ की तरह ठण्डा जमा हुआ मौन तोड़ते हुए मैंने पूछा, "कैथी, तुम्हारा बचपन बहुत दुःख में बीता, पर वह सब दुहराकर अब क्या फायदा? आगे देखना चाहिये, कैथी!"

"हां, मैं आगे ही देखना चाहती थी, डाक्टर···पर यह पाकिस्तान का हसन मेरी जिन्दगी में आया। इस व्यक्ति ने मेरी नींद हराम कर दी। मेरा सुख-दुःख छीन लिया। उसने मुझे बड़ा मोहक फुसलावा दिया। वह पहले उर्दू पढ़ाने का बहाना बनाकर मुझमें दिलचस्पी लेने लगा। आपको पता है, हमारे भाषा-विभाग के प्रमुख जैनेबर्ग भी यहूदी थे। उन्होंने मुझे पूर्व की यह भाषा सीखने के लिए प्रेरित किया। मैं जानती थी कि ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में धर्म आड़े नहीं आता। कोई यहूदी अरबी सीख ले तो क्या? कोई जरमन ईसाई इब्रानी सीख ले तो क्या? क्या तुम्हारे देश भारत में कई लोग पाकिस्तान की राष्ट्रभाषा उर्दू नहीं सीखते? क्या वह मुसलमानों की भाषा है?"

मैंने कहा, "नहीं, उसे हिन्दू और गैर-हिन्दू कई लोग सीखते हैं। वह सिर्फ एक सूबे की जबान नहीं। उर्दू जानने वाले उत्तरप्रदेश में हैं, पंजाब में हैं, आन्ध्र-प्रदेश में हैं, मध्यप्रदेश में हैं, बिहार में हैं, बंगाल में हैं। उसके कई अच्छे लेखक गैर-मुस्लिम भी हुए, और उस जमाने में हुए जब पाकिस्तान शब्द भी अस्तित्व में नहीं आया था। चौधरी रहमतअली और इकबाल ने १९३० में पंजाब के लिए 'पी', अफगानिस्तान के लिए 'ए' और कश्मीर के लिए 'के' शब्द जोड़कर यह लफ्ज बनाया। तब पूर्वी बंगाल का इस कल्पना के निर्माता जिन्ना और उसके समर्थकों को सपने में भी खयाल नहीं था। यह तो सब ब्रिटिश मन-बांटन रेडक्लिफ साहब की मेहरबानी है कि···"

कैथी फिर सूजी हुई लाल-लाल आंखों से गुस्से से भरकर दस-पांच गालियां हसन

को देकर कहने लगी, "डाक्टर, जैस नेबर्ग का प्रेम पहले एक क्वेकर लड़की से था, बाद में एक कैथोलिक लड़की से हो गया। खुद यहूदी होते हुए उन्होंने कैथोलिक से शादी की। उससे क्या फर्क पड़ता है? प्रेम इन बातों को लांघ जाता है, डाक्टर। हमारे देश में ऐसे कई जोड़े हैं जहां स्त्री-पुरुष दोनों की संस्कृति, धर्म, विश्वास, सब एक दूसरे से अलग-अलग हैं। विवाह के बाद पति-पत्नी को अपनी पूरी धार्मिक स्वतंत्रता है—पूजा-अर्चना की स्वतंत्रता···"

"हां, कैथी, हमारे यहां बंगाल में ब्राह्मसमाज के आन्दोलन के बाद ऐसा होता था। मां वैष्णव है, पिता ब्राह्मण है, पुत्र ईसाई है, पुत्रवधू बौद्ध है इत्यादि। पर यह सब बात तुम क्यों कह रही हो? हसन तो अब यहां नहीं रहा, वह तो मैंने सुना, पाकिस्तान वापस चला गया है।"

"वह एक दूसरी ईसाई लड़की की भी जिन्दगी खराब करके, बाद में एक पोर्टोरिकन लड़की को मुसलमान बनाकर अपने साथ ले गया। मैंने सुना है कि जब वह कराची गयी, तो पता चला कि हसन की पहली बीवी मौजूद है, और उससे उसे कई बच्चे हैं। जब इस मरियम को बहुत बुरा लगा तो हंसकर बोला, 'हमारे धर्म में चार विवाह तो जायज हैं। इससे क्या फर्क पड़ता है।' बाद में मैंने सुना, वह भी तंग होकर वहां से भागकर वापस अमरीका चली आयी। कहीं ड्रग-स्टोर्स में काम करती है।

"तो आखिर यह हसन यहां पढ़ने आया था, या इश्क करने और अनेक शादियां रचाने?"

"उसने मेरे जीवन को नष्ट कर दिया। उसने न केवल प्रेम किया और कई लम्बे-चौड़े आश्वासन दिये, पर मुझे गहरा धोखा भी दिया। उसने सब ओर मेरे मित्रों के मन में सन्देह पैदा कर दिया। मेरी मारफत वह मेरी कई दोस्तों से मिला। उनके साथ उसने 'डेटिंग' की। वह शैतान था!"

"कैथी, तुम भावुक हो रही हो। तुम्हारे देश में इस तरह के अन्तर्राष्ट्रीय और अन्तर्धर्मीय मिलने-जुलने को बुरा कहां माना जाता है। तुम लोग तो प्रेम को एकदम जीव-शास्त्रीय और मनोवैज्ञानिक आवश्यकता मानकर चलते हो···"

"मानते होंगे और अमरीकी। हमारे यहां तो यहूदियों में विवाह की रस्म में एक ही प्याले से शराब पी जाती है, और उसे वहीं तोड़ दिया जाता है। यह इस बात का संकेत है कि इस प्याले को और कोई जूठा नहीं कर सकता।"

फिर कैथी ने मुझे वह पूरी कथा सुनायी कि कैसे पाकिस्तान के हसन नामक गरीब विद्यार्थी ने कैथी की सहानुभूति जीतने की कोशिश की। उससे रुपये भी उधार लिये, जो कभी नहीं लौटाये। उसे कई तरह के सब्जबाग दिखाये। झूठे ही कह दिया कि पाकिस्तान में वह बहुत ऊंचे घराने का है। मां-बाप से लड़कर आया

है, इसलिए वे पैसा नहीं भेजते। उर्दू भाषा का तो वह एकमात्र विद्वान है। उसकी शायरी सुनकर 'जनरल अय्यूब भी एक बार रो उठे थे। और ऐसी कई गप्पें! हसन में एक बड़ी कला थी—बहुत निरीह और भोला बनकर वह सुनने वाले या सुनने वाली के दिल में जगह बना लेता था।

और फिर एक बार चंचु प्रवेश हो जाय, तो 'चंचु प्रवेशे मुसल प्रवेशः'। अंगुली पकड़कर पहुंचा पकड़ने की कला में वह उस्ताद था।

कैथी साधारण लड़की थी। उसका रूपरंग कोई खास नहीं था। उसे इस अतिरिक्त साहस का भी गुप्त आनन्द था कि वह एक विरोधीधर्मीय का दिल जीत रही है। पर हुआ उलटा ही। हसन का कोई 'दिल' नहीं निकला। वह तंगदिल और संगदिल था। उसने कैथी के भोलेपन का पूरा फायदा उठाया।

और एक दिन भौंरा फूल पर से उड़ गया। यह पुरानी ही कहानी है। पर यहां भौंरा अपना देश छोड़ गया। सांप की तरह अपना जहर और उसके नील फूल पर छोड़ गया।

कैथी क्रोध से फुफकार रही थी। घृणा और तिरस्कार से वह हर पाकिस्तानी को और हर मुस्लिम को कोस रही थी। मैंने उसे बहुतेरा समझाया, "हमारे देश में बड़ी तादाद में कई धर्मों के लोग हैं। सभी हिन्दू ही नहीं हैं। हम सब जनम से एक साथ, दोस्ताना ढंग से रहते हैं। हरेक को अपनी पूजा-परातिश की पूरी आजादी है। मैं पाकिस्तान की बात नहीं जानता, वहां कभी जाना नहीं हुआ। पर



यरूशलम के यर्दन वाले हिस्से में मैं पांच दिन तीर्थयात्रा करता रहा। वह मुस्लिम देश है, ईसाई धर्मस्थान है। कोई कठिनाई अब नहीं है।

"पर उस मृत समुद्र-जैसी रेतीली जमीन की पट्टी के पार यहूदियों का पलिश्तीन के साथ हजारों बरसों का कभी हल न हो सकने वाला झगड़ा है। इस्राएल और अरब राष्ट्र एक-दूसरे पर छुरी ताने खड़े हैं। धर्मान्धता चाहे किसी देश में हो, वहां के नागरिकों को सुख से जीने नहीं देती।"

पर कैथी एक भी बात सुनने को राजी नहीं थी। हसन उसके लिए समूची मुस्लिम कौम का और हर पाकिस्तानी का प्रतिनिधि था। पतित और स्त्री लोलुप, धन लोभी और दूसरों पर धर्म-परिवर्तन का बलात्कार करने वाला।

मुझे लगा कि मैं कथी को कभी नहीं समझा सकता। शाम घिरने लगी और मैं उठने लगा, तो कैथी की आंखों में आंसू थे। वह कंपकंपाते स्वर में बोली, "डाक्टर, मेरे लिए तुम प्रार्थना करो। क्या मुझे अपने पापों से मुक्ति मिल जायेगी ?"

मैंने कहा, "गुण्डे के हाथों पड़ने में तुम्हारा क्या पाप है ? गुण्डे को जब तक पहचानती नहीं तब तक भोलेपन में जो किया, वह इनसान का इनसान के साथ कर्तव्य था। बाद में क्या बचा रहता है। तुम्हारे ही धर्म में है कि मूल में सिर्फ 'रेशित' था, उसमें से एक ज्वाला उठी, उसी अंधी 'आईन सोफ' (अनन्त) में से। वह ज्वाला ईश्वर है। वह सबको छूती है और तुम उसमें से बच निकलते हो। इसी लिए मूसा ने कहा 'मेरे' ईश्वर,'हमारे' ईश्वर नहीं। प्रेम हो या ईश्वर, सब मेरा, अपना, अकेला होता है। वह सबका, सामूहिक, हमारा नहीं हो सकता। वैसे तो वह हसन की तरह सबको दुःख ही देगा।" ●

सोचने का विषय बदल गया है

"एक समय की बात है, किसी शहर में एक लड़का रहता था। वह हमेशा लड़कियों के बारे में सोचा करता था। उसका कहना था कि वह जिन्दगी भर इसी विषय पर सोचता रहेगा।"

"फिर ?"

"लेकिन मैं पच्चीस वर्ष बाद कल उससे मिला। बातचीत के दौरान मैंने पाया कि उसने अपना पुराना विषय बदल दिया है।"

"अब किस विषय पर सोचता है ?"

"अब वह औरतों के बारे में सोचता है।"

नीलकण्ठ

भगवतीशरण मिश्र

लेटर-बाक्स की जीभ को छूते समय शीला का हाथ आखिरी बार कांपा था, पर उसने नंगे पोस्टकार्ड को चन्द नंगी पंक्तियों के साथ उसके पेट में उतार ही दिया। ऐसा करते समय उसे लगा, जैसे उसने किसी उफनते दूध के बरतन पर पानी का एक जबर्दस्त छींटा मार दिया हो, अथवा किसी करत के उठे हुए फन पर डण्डे की एक करारी चोट जड़ दी हो। हां,यही होना चाहिये था। दशाश्वमेध के कोने के उस लेटर-बाक्स में अपना सारा आक्रोश उगल, अपने अन्तर में उठ रही भावनाओं के प्रबल तूफान को उसने अपने निर्णय के औचित्य से दबाना चाहा था। अब जब उसके अन्दर सुरेश के लिए कहीं कुछ पसीजता ही नहीं, तो इसमें उसका क्या दोष। और तब सिवा इसके कि वह सुरेश के अन्दर फूटे उसके प्रति स्निग्धता और सौहार्द के प्रवाह पर अपनी वितृष्णा और असहमति की चट्टान पटक दे, उसके पास और चारा ही क्या है? नहीं, उसने जो कुछ किया वह ठीक ही किया है। उसने अपने मन को सान्त्वना दी, सुरेश से उसका अब कोई सम्बन्ध नहीं है।

दशाश्वमेध की भीड़-भरी सड़क को पारकर वह घाट तक आ गयी। गंगा का पानी नीचे खिसक गया था और धार तक पहुंचती नंगी सीढ़ियों की पाषाणी पंक्ति किसी विधवा की उजड़ी मांग की नंगी लकीर-सी लग रही थी। कहीं ऐसी ही तो अन्दर से वह नंगी और वीरान नहीं हो गयी। एक क्षण के लिए उसके अन्दर कुछ खटका, जैसे किसी नंगी सीढ़ी से पानी की एक धार टकरायी हो, पर दूसरे ही क्षण वह आश्वस्त हुई, जब तक शेखर है, तब तक उसके अन्तर का हर कोना आबाद रहेगा। खट-खटकर वह सीढ़ियां उतरने लगी और साथ ही उसका मन अतीत के गह्वर में एक के बाद एक अनगिनत सीढ़ियां उतरता चला गया। शायद इसी तरह कभी सुरेश उसके दिल के अन्दर सीढ़ियां उतरता चला गया था और उसे यह सब बहुत आह्लादपूर्ण और अनूठा लगा था, जैसे किसी शान्त झील की छाती को किसी शिकारे ने मथकर आन्दोलित कर दिया हो।

सीढ़ियां उतरती शीला धार के समीप

आ गयी। पश्चिम के डूबते सूर्य ने गंगा के पानी पर ढेर-सा रंग बिखेर दिया था, और शीला को लगा, मानो अभी-अभी किसी की हत्या हो गयी है और उसके रक्त से पूरा का पूरा पानी लाल हो गया है। उसे लगा, यह हत्या कोई और हत्या नहीं बल्कि अभी-अभी उसके हाथों सम्पादित सुरेश के प्यार की, उसकी भावनाओं की ही निर्मम हत्या है और उसके खूनी हाथों के स्पर्श से ही गंगा का पानी रक्तिम हो उठा है। उसे लगा, उसके हाथ 'डंकन' की हत्या करने वाले 'मैकबेथ' के हाथों से कम दूषित नहीं, और वह चाहे तो संसार के सारे समुद्रों को अपने हत्यारे हाथों के एक स्पर्श से ही रक्तिम कर सकती है।

तट से उसने एक छोटी-सी नौका की और भावनाओं के प्रबल वेग से आन्दोलित अन्तर लिये धार पर बहती नौका से किनारे पर उतरती उदास संध्या को निहारती रही। वाराणसी के तट उसे कभी भी अनाकर्षक और मनहूस नहीं लगे। किनारों पर खड़ी आकाश भेदी अट्टालिकाएं, उनके कंगूरों पर बसेरा बनाये गुटर-गूं करते कबूतरों की जोड़ियां, त्रिपुण्डधारी पण्डितों से शोभित वितान-सी तनी छतरियां और गंगा की उठती-गिरती ऊर्मियों को देखने के लिए सीढ़ियों और कगारों पर जमी दर्शकों की टोलियां हमेशा उसके मन को बांधती रही हैं। मोर्चे से छोटी-छोटी छुट्टियों में लौटे शेखर के साथ जब-जब उसने गंगा के जल पर नौका बिहार का प्रोग्राम बनाया है, तब-तब वाराणसी के ये भीड़-भरे किनारे, गंगा की ये शोख-गोल ऊर्मियां और किसी अल्हड़ अभिसारिका-सी शनैः-शनैः कूलों पर उतरती संध्या की ये रंगीनियां निखर-निखर आयी हैं। खासकर पूरे चांद की रातों में जब-जब शेखर उसे गंगा की इन लहरों पर खींच लाया है, तब-तब पिघलते चांद के नीचे शेखर के अंक में निढाल-सी पड़ी शीला ने यह सोचा है कि संसार के सारे सुख उसी के आंचल में सिमट आये हैं और हर ऐसे अवसर पर शेखर की आंखों में अपनी आंखें डालने





का प्रयत्न करते हुए शीला ने पूछा है, "इस चांद को देखते हो, शेखर ?"

"किस चांद को, धरती के या आसमान के?" हलकी शीतल बयार के द्वारा उलझा दी गयी शीला की लटों से खेलते हुए शेखर ने कहा है ।

"धत् ! तुम्हें तो छेड़खानी की ही सूझती है । मैं आसमान के चांद की बात कर रही थी । देखो तो आज कैसा भरा-पूरा लग रहा है, पर कल से घटते-घटते··· कहीं तुम्हारा प्यार भी इसी तरह···।" और यहीं पर शेखर ने उसके फड़फड़ाते होंठों पर अपनी कांपती अंगुलियां रख दी हैं, "तुम सभी को सुरेश ही समझती हो, शीला ।" पर ऐसे हर क्षण शीला के सारे स्वप्न बिखर गये हैं जैसे किसी अबोध बालक ने अंजुलियों में बंधे फूलों पर हाथ मार दिया हो । सुरेश की याद अतीत के कब्र से किसी खण्डहर पर पनप आये बिरवे-सी उठ आयी है और एक दर्द से उसका दिल कराह पड़ा है । हर ऐसे अवसर पर उसे लगा है, जैसे पूजा के अक्षतों में मुंह मारते बकरे को किसी ने बलि का खड्ग दिखा दिया हो । भला इसमें सुरेश का दोष ही कितना है ! हर बार उसने सोचा है, अगर शेखर, सुरेश और उसके बीच नहीं टपक आया होता, तो आज शीला के सिर के नीचे शेखर के बदले सुरेश की ही जांघें होतीं । शेखर शायद उसके मन के द्वन्द्व को भांप जाता है और बोलता है, "सुरेश की याद आ गयी न ?"

"नहीं तो, भला ऐसे समय भी किसी दूसरे की···।" हर बार यह झूठ उसकी जबान पर चढ़ आया है और हर बार उसने यह अनुभव किया है कि ठीक ऐसे ही मौकों पर दिल के किसी कोने में सोई सुरेश की याद अंगड़ाई लेकर जाग पड़ती है और शीला के सपने हरसिंगार के सुबह के

फूलों के समान झड़ पड़ते हैं। पर अब उसे यह याद भले ही किसी तिक्त ओषधि की कड़वी घूंट-सी अप्रिय लगती हो, पर वह जानती है कि एक समय ऐसा भी था जब सुरेश के ख्वाबों में खोई वह संसार के हर आकर्षण को लात मारने को प्रस्तुत थी।

काश, यह सब नहीं हुआ होता! धार को चीरती नौका मरणकण्डिका पर पहुंच गयी थी। चट्-चट्कर जलती जली-अधजली लाशें उदास सन्ध्या के आंचल में अंगारे भर रही थीं और शीला का मन अतीत के खण्डहरों में उदास, आवारा भटक रहा था। काश, सुरेश से वह इतना दूर नहीं आ गयी होती! न चाहते हुए भी उसके अन्दर कहीं नीचे से एक हूक उठी और वह अव्यवस्थित-सी हो गयी, जैसे पृथ्वी के गर्भ में सोये किसी ज्वाला-मुखी ने एक दीर्घ निःश्वास ली हो और धरती की छाती कांप गयी हो। नहीं, उसे सुरेश को वह पत्र नहीं छोड़ना था। शीला को लग रहा था, उसके निर्णय का औचित्य किसी मूलविहीन पौधे की तरह भावनाओं की झंझा में बेबस कांप रहा है। बहुत होता, वह सुरेश के पत्र का जवाब ही नहीं देती, उसके मस्तिष्क ने समाधान रखा, पर किसी के प्यार-भरे दिल को कांच के प्याले की तरह किसी चट्टान पर दे मारना कोई न्याय नहीं है!

"हर सुख क्षण स्थायी होना है, शीला। मुझे लगता है, शायद हमारा साथ भी बहुत लम्बा नहीं हो।" सुरेश उन दिनों अक्सर कहा करता था और शीला उसकी बात को सुनी-अनसुनीकर कह पड़ती थी, "चांदनी को कोई चांद से अलग नहीं कर सकता, सुरेश!" और आज कहां चांद और कहां चांदनी! काश, शीला को यह पता होता कि चांदनी चांद की ही चीज है, किसी तारे के आगोश में वह नहीं सिमट सकती!

"तुम बहुत आकर्षक हो शीला, बहुत योग्य भी। तुमने एम. ए. किया है, संगीत और नृत्य में तुम एक ही कुशल हो। मैं सेना का एक अफसर हुआ तो क्या, हूं तो इण्टर ही। मुझे भय है, कहीं मैं तुम्हे खो न दूं···।" शेखर ने अक्सर यह बात उठायी है और हर ऐसे समय अनाड़ी सर्जन की तरह उसने एक भरते घाव को कुरेद दिया है।

"एक बात जानती हो, शीला?" एक बार उसके ड्राइंगरूम में बैठे हुए शेखर ने पूछा था। चार दिनों की छुट्टी में वह काश्मीर मोर्चे से आया था। छुट्टियों में घर जाने के बदले वह वाराणसी ही आ जाता था और शीला का मेहमान बनता था। उस दिन जब वह अकस्मात् आ पहुंचा, तो शीला अपने ड्राइंगरूम में बैठी सुरेश की लिखी एक पुस्तक के पन्ने उलट रही थी।

"क्या?" उसने अन्यमनस्क-सी होकर पूछा था। वह जानती थी कि हर ऐसे मौके पर शेखर कोई निराशापूर्ण बात बोलता है, कोई कुण्ठाग्रस्त बात!

छिह, शेखर जान पाता कि प्यार के पहले समानता-असमानता की जो बात उठती होगी, उसके बाद इसका कोई प्रश्न ही नहीं रहता ! काश, वह अपने अभावों के प्रति इतना सजग रह, सुरेश को भूलने में इतना बड़ा व्यवधान नहीं बनता !

"बोलो न ।" शेखर चुप हो उसकी आंखों में कुछ ढूंढने का प्रयत्न कर रहा था । वह शायद वहां एक ऐसे अतीत की छाया खोज रहा था जो हमेशा उसके अवचेतन पर हावी रह उसे जो कुछ सहज उपलब्ध था उसके उपभोग से भी वंचित रख रही थी ।

"मैं कह रहा था, शीला, प्यार की दुनिया में एक अद्भुत नियम चलता है । अक्सर हम उसे प्यार करते हैं जो किसी और को प्यार करता है । न जाने प्रकृति का यह कैसा विधान है कि जिसके हम समीप जाना चाहते हैं वह दूर भागता है, और जिससे हम दूर भागते हैं वह समीप आता है ।" शेखर ने अन्ततः अपने मन की बात कह ही डाली थी और शीला का मन एक क्षण के लिए शेखर के प्रति घृणा और विद्रोह से भर गया। अन्तर था । शेखर और सुरेश में महान् अन्तर ! आखिर संस्कार, शिक्षा और संगति भी तो कोई चीज है ! कहां की थी सुरेश ने कभी ऐसी अविश्वास और संदिग्धतापूर्ण बातें ! वह कहता था, "प्यार अन्य नैसर्गिक वस्तुओं की तरह मनुष्य के लिए एक वरदान है, शीला, और सच्चा प्यार जि ने दिन मिल जाय उतने ही से सन्तोष करना चाहिये । फिर बात यह भी है कि अपने अनिवार्य स्वभाव के वश में हो मनुष्य अपनी ही प्रकृति के लोगों की तरफ आकृष्ट होता है, और प्यार की दुनिया भी इस नियम का अपवाद नहीं है ।" काश, सुरेश उस समय अपने और शीला के इस आन्तरिक साम्य पर इतनी आस्था नहीं पाले होता या फिर शीला को ही यह लगा रहता कि बाहर से चाहे वह जितनी सुसंस्कृत और शिक्षित हो गयी हो, पर उसका हृदय तो एक उसी अस्थिर नारी का है जो लाख चाहकर भी अपने अन्दर से विविधता की इच्छा नहीं निकाल पाती ! अगर ऐसा हुआ रहता, तो आज शीला पर जो बीतता सो बीतता, पर सुरेश के मन में सारी नारी जाति के प्रति कलुष और अविश्वास नहीं भर जाता ।

'सुरेश महान् था, साधारण से अधिक महान् ।' शीला सोचे जा रही थी । और इसी महानता ने उसे शीला की तरफ से आश्वस्त कर दिया था । वह शीला को प्यार करता था, आवश्यकता से अधिक प्यार । यही कारण था कि उसने उसके प्रति अपने प्यार की बात कभी जबान पर नहीं लायी थी, "प्यार करने की चीज है, शीला ! अगर तुम प्रेमी की आंखों में आंख डाल अपने प्रति प्यार की गहराई का अनुभव न कर सको, तो बातें तुम्हारा पेट भर दें, तुम्हारे अन्दर आस्था नहीं उत्पन्न कर सकतीं ।" पर सुरेश यहीं गलती करता था, पुरुष और नारी में अन्तर अनुभव करने में उसका अव्यावहारिक



मस्तिष्क असफल रहा था। पुरुष नारी की आंखों में अपना प्रतिबिम्ब देख आश्वस्त हो सकता है, पर सदा से प्रशंसा-प्रिय, संदिग्धता और अनास्थाग्रस्त नारी को इतने से सन्तोष नहीं होता। मूक प्यार से ज्यादा आवश्यक उसके लिए मिथ्या प्रशंसा है, न जाने इस लघु सत्य को पुरुष कब समझ पायेगा। और यही कारण है कि आज सुरेश का हृदय जिस रत्न के प्रकाश पर मुग्ध हो उसे अपना सर्वस्व मान बैठा था, उसी की दाहक आंच में वह आज तिल-तिलकर जल रहा है।

बेचारा सुरेश! उसे क्या पता था कि जिस देवी को वह पवित्र और पूज्या मान अपनी अर्चना के पुष्प चढ़ाये जा रहा है, उसके अन्दर किसी क्रूर राक्षसी का एक घृणित हृदय बसता है। हवा के एक तेज झोंके के साथ शीला की नाव एक क्षण के लिए डगमगा गयी पर नाविक ने इसे सम्हाल लिया। औरत की जिन्दगी की नाव के लिए भी खासकर एक योग्य नाविक की आवश्यकता होती है, पर जहां नाविक ही अविश्वास और हीन भावना से ग्रस्त हो वहां नाव की खैर कौन मनावे! नहीं, कोई तुलना नहीं थी सुरेश और शेखर में!

"मुझे तो कोई पुरस्कार नहीं मिला, सर!" बात यद्यपि सुरेश ने प्रो. श्रीवास्तव से कही थी पर शीला के दिल में गुदगुदी जग आयी थी। उस दिन लड़कियों के कामनरूम का वार्षिकोत्सव था! शीला ने संगीत और नृत्य प्रतियोगिताओं में खुलकर भाग लिया था और हर प्रतियोगिता में उसे प्रथम पुरस्कार मिला था। रात के नौ बजे तक यह उत्सव चला था और इसकी समाप्ति के बाद सभी कलाकार प्रो. श्रीवास्तव के साथ लौट रहे थे। बेवकूफ शीला ने मन

ही मन कहा था, तुम्हें तो सबसे बड़ा पुरस्कार मिला है, और उसने अपने निचले होंठ को काट लिया था।

"तुम शीला को घर छोड़ आओ। रात के समय अकेले जाना ठीक नहीं।" प्रो. श्रीवास्तव ने सुरेश को आदेश दिया था। कालिज का कम्पाउण्ड यहां खत्म हो रहा था और वे स्टेशन रोड के नुक्कड़ पर आ गये थे।

"ऐसे नहीं, एक रिक्शा रोक लो।" बायीं ओर के मोड़ पर सुरेश मुड़ने को हुआ था, तो प्रो. श्रीवास्तव बोले थे और एक विचित्र अनुभूति से शीला के मन-प्राण सिहर गये थे। सुरेश के साथ! एक रिक्शे पर! वह भी रात्रि के माहौल में! नहीं, उसके इतना समीप वह आज तक नहीं आयी थी। हे भगवान्, भाग्य-चक्र कितनी तेजी से घूम रहा है, उसने सोचा था।

पर उस दिन कुछ नहीं हुआ। अगर सचमुच उस दिन कुछ हो गया होता, तो आज वह न होता जो हो रहा था। शीला का मन उद्विग्न हो गया। उसकी नाव धार की तरफ बढ़ती रामनगर के किले तक पहुंच चुकी थी। उसने नाविक को पीछे चलने को कहा और फिर अतीत के खण्डहरों में भटक गयी।

सुरेश एक और रिक्शा रोक चुका था और प्रो. श्रीवास्तव से बोला था, "मैं दूसरे रिक्शे पर बैठ जाता हूं। मिस शीला को इनके घर छोड़ते हुए चला जाऊंगा।" अनाड़ी! शीला के मुंह से निकला था और उसका दिल बैठ गया था। इतना परहेज, इतनी दूरी! और फिर वह बिना कुछ बोले अपने रिक्शे पर बैठ गयी थी।

रात्रि की नीरवता में सिविल लाइन्स की सड़कों पर दो रिक्शे दौड़े जा रहे थे। सड़क के दोनों किनारे खड़े छायादार वृक्षों से छन-छनकर आती हुई चांदनी वातावरण को अत्यन्त मोहक बना रही थी, पर रिक्शे थे कि खामोश भागे जा रहे थे। पता नहीं ऐसे में सुरेश के मन में कुछ उठ रहा था या नहीं, पर शीला को लग रहा था कोई उसके कलेजे से मांस के लोथड़े पर लोथड़े काटे जा रहा है। काश, इस समय सुरेश इसी रिक्शे पर होता!

और दूसरे दिन शीला ने उसके साथ यह बात चलायी तो वह पूरा दार्शनिक और आदर्शवादी बन गया था, "तुम आखिर क्यों चाहती थीं कि मैं तुम्हारे रिक्शे पर जाता? रात्रि का समय, रोमाण्टिक वातावरण और दो युवा प्रेमी। मान लो, कुछ उचित-अनुचित हो जाता, तो?"

तो तुम्हारा सिर, उसका मन झुंझलाया था। यह भी प्यार करने का कोई ढंग है? आखिर कब तक चलती यह दूरी! पर कौन समझाता सुरेश को। वह तो अपना आदर्शवाद ले बैठा था, "मेरी अपनी कुछ मान्यताएं हैं, शीला। मेरे खयाल से मनुष्य जिससे प्यार करता है, उसकी वह पूजा करता है, और पूजा किसी पवित्र और विशुद्ध चीज की ही होती है, और अपने प्रिय-पात्र को अपने ही हाथों

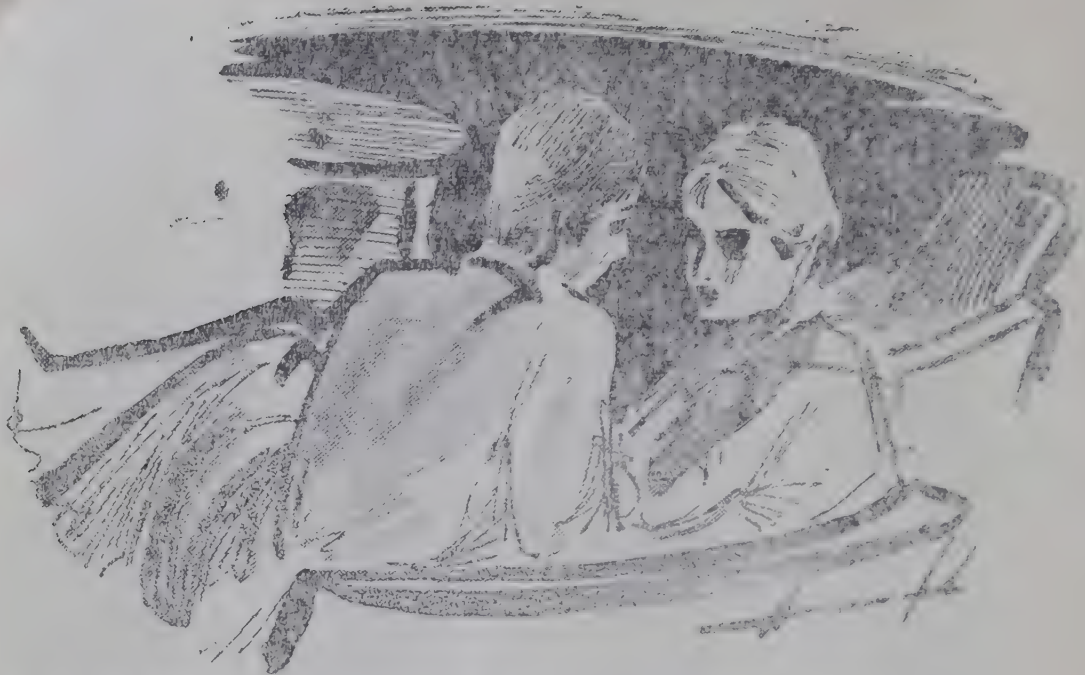
भ्रष्टकर कोई अपने प्यार की अपने हाथों हत्या करने की बात नहीं सोच सकता।" क्या कह गया था सुरेश ? कैसी बात ? वह आज तक उसकी समझ में नहीं आयी और उस दिन वह उस शान्त क्लासरूम में बरबस फफक पड़ी थी, "तो क्या तुम कभी भी मुझे हाथ नहीं लगाना चाहते ? यह कैसा प्यार है ? हे, रा···म !" पर फिर भी वह चट्टान ही बना रहा था, "मुझे गलत न समझ, शीला। मैं तो केवल इतना ही जानता हूं कि जब तक तुम मेरी पत्नी नहीं बन जातीं, तुम मेरी बहन हो।" सुरेश ने अपना निर्णय सुना दिया था और शीला ने अपना सिर पीट लिया था।

पवित्रता···विशुद्धता···आदर्श। औरत के लिए ये शब्द कोई अर्थ नहीं रखते। काश, सुरेश अपने आदर्शों की काल्पनिक ऊंचाइयों में ही नहीं भटकता रहता और यह जान पाता कि एक अबला नारी के लिए जो हमेशा असुरक्षा और अनिश्चितता का शिकार रहती है, आदर्श और विशुद्ध बने रहना मात्र कल्पना की बातें हैं। पुरुष आसानी से आदर्शवाद का जामा पहन सकता है, आदर्श रह भी सकता है। पर जिस पर चौबीसों घण्टे लोलुप और पिपासु नेत्र अवसर की प्रतीक्षा में गड़े रहते हैं वह नारी कब तक अपने आदर्श की रक्षा कर सकती है ! कब कौन किधर से कितना मांस नोचेगा, यह वह नहीं जानती, और तब चारों ओर से भ्रष्ट और प्रवंचकों से घिरी वह कब तक आदर्श की दुहाई देने योग्य रह सकती है।

शीला का मन उचटा था उसी दिन पहले-पहल सुरेश की तरफ से और उसने सुरेश के प्यार की निर्मल स्वच्छ चादर में अपने संशय और अविश्वास के धब्बे जड़ दिये थे—कहीं वह किसी दूसरे से तो···?

छिह, कैसा घृणित विचार पाला था उसने सुरेश के प्रति, और कितना तूल दे दिया था शेखर ने उसको ! आज भी शीला का मन अपनी मूर्खता और शेखर की नीचता की बात सोच-सोच कैसा-कैसा हो जाता है।

"मैं कहता हूं, सुरेश को वाणी से प्यार है और तुम हो कि उसे देवता मान पूजे जा रही हो।" शेखर जो आरम्भ से ही उस पर छाने का प्रयत्न कर रहा था और जिसे वह सदा दूर ही दूर रखती आयी थी, एक दिन अवसर पाकर बोल पड़ा था। जवाब वह क्या देती पर अपने संशय की सम्पुष्टि होते देख उसकी दोनों आंखें भर आयी थीं और ऐसे अवसरों पर कभी न चुकने वाले शेखर ने उसकी दोनों हथेलियों को अपने हाथों में बांध शायद बहुत दिनों से जीभ पर चढ़ी बात उतार ही दी थी, "अगर तुम कभी मेरी आंखों में भी वह बात ढूंढ़ने का प्रयत्न करतीं जिसे तुम सुरेश की आंखों में ढूंढ़ने का निरर्थक प्रयास करती आ रही हो, तो न तो मैं इस अनावश्यक भटकाव का शिकार होता न तुम एक अनिश्चय की स्थिति में पड़ी रहतीं।" और फिर वह इस भय से ग्रसित हो कि कहीं शेखर भी अपने भटकाव का शिकार हो किसी अन्य किनारे न लग



जाय, उसे आगे बढ़ने को प्रोत्साहित करने लगी और सुरेश की तरफ से उसका मन हटने लगा। काश, सुरेश को शीला के मन के पाप का पता लग गया होता, और वह समय रहते सजग हो गया होता, तो आज न तो वह टूटता न शीला ही इस द्वन्द्व का शिकार हो अव्यवस्थित और असन्तुलित होती।

सुरेश की आंखें खुली थीं और उस समय खुली थीं जब शीला की आंखें सदा के लिए बदल गयी थीं। शेखर यद्यपि अपना ग्रेजुएशन नहीं कर सका था और शीला एम. ए. करने जा रही थी, पर शीला पर शेखर का वह भूत सवार हो गया था जो उतरने को नहीं था। कई बार शीला ने शेखर के बढ़ते हाथ रोकने चाहे थे, पर अन्त में वह सफल हो गया था और शीला असफल। शायद उसका विरोध ही तगड़ा नहीं रहा।

कितना अन्तर था शेखर और सुरेश के तर्कों में! दोनों जैसे दो ध्रुवों से बोल रहे थे। उस दिन जब उसने शेखर को हद से ज्यादा बढ़ने से मना किया था, तो वह बोल पड़ा था, "मैं नहीं समझ पाता, शीला, कि तुमने प्यार में संयम की बात कहां से सीख ली। शायद सुरेश का थोथा दर्शन तुम पर भी हावी हो चुका है। आदर्श और व्यवहार में आसमान-जमीन का अन्तर है, शीला, और जब हमारे पांव धरती पर हों, तो आंखों को आसमान में टिकाकर चलना कोई बुद्धिमानी नहीं है।"

शीला पर शेखर का तर्क क्या चलता, पर वास्तविकता यह थी कि संयम और आदर्श पर आधारित सुरेश के प्यार ने पुरुष के सामीप्य के लिए उसके अन्दर एक

भयंकर भूख भर दी थी। फिर भी जब किसी वस्तु की प्राप्ति की सम्भावना स्पष्ट हो जाती है, तो उसके प्रति व्यग्रता भी घटने लगती है। और वह भी यह अनुभव करने लगी थी कि यदि शेखर उस पर इस तरह हावी न रहे, तो वह उनके मध्य की दूरी को तब तक कायम रख सकती थी जब तक वह शेखर के सम्बन्ध में कोई निश्चित धारणा नहीं बना लेती। इसी लिए उस दिन ड्राइंगरूम में जब शेखर उसके हाथों में सुरेश की पुस्तक देख अपनी पुरानी हीन-भावना का शिकार हो गया था, तो वह खीझकर बोली थी, "तो, शेखर, अगर तुम यह सोचते हो कि मैं अब भी सुरेश को नहीं भूल पा रही हूं, तो ऐसा करने के लिए तुम स्वतन्त्र हो। अब जब तुम्हारे अन्दर कोई ऐसी ग्रन्थि उत्पन्न हो गयी है जिसके फलस्वरूप तुम अपनी चीज को भी परायी समझने पर बाध्य हो, तो यह चाहे तो मेरा, चाहे तुम्हारा दुर्भाग्य ही है।"

शायद अन्तिम वाक्य शीला को नहीं कहना था। स्वाभाविक था कि शेखर ने इसका कोई और अर्थ ले लिया। शीला शेखर को कोई प्रोत्साहन देना नहीं चाह रही थी, पर जो बात निकल चुकी थी वह वापस होने से रही। शेखर के चेहरे पर एक चमक आयी थी और वह छूटते ही बोल पड़ा था, "बात तो तुम बड़ी अच्छी कह गयीं शीला, पर मेरी समझ में नहीं आता कि मेरे पास अपनी वस्तु को अपनी समझने का ठोस प्रमाण भी क्या है?" कैसी छिछली और थोथी बात थी! शीला को हंसी आ गयी थी।

"कौन-सा प्रमाण चाहते हो, शेखर? क्या यही प्रमाण पर्याप्त नहीं है कि मैं सभी से सारे सम्बन्ध तोड़कर केवल तुम्हारी और तुम्हारी रह गयी हूं? अगर तुमने संशय और अनिश्चय की स्थिति में ही बने रहने की कसम खा ली हो, तो बात और है, नहीं तो तुम जानते हो कि मेरा जितना तुमसे निकट का सम्बन्ध है, उतना किसी से नहीं रहा।" वह कुछ खीझकर बोली थी और शेखर जो अब तक अलग बैठा था, शीला के ही सोफा पीस पर आ गया था और उसकी दाहिनी हथेली को अपने हाथ में लेकर बोला था, "तुम मुझे गलत समझ गयीं, शीला। मेरा मतलब यह नहीं था कि मैं तुम्हारे प्यार पर अविश्वास करूं अथवा उसे संदिग्ध दृष्टि से देखूं। मैं तो केवल अपने और तुम्हारे मध्य की बचीखुची दूरी भी समाप्त करना चाहता हूं। अगर ऐसा न हो, शीला, तो मुझे भय है कि मेरे और तुम्हारे सम्बन्धों की भी वही हालत होगी जो सुरेश और तुम्हारे सम्बन्धों की हुई। नहीं, मैं इस सम्बन्ध में कोई 'रिस्क' नहीं लेना चाहता।" और शेखर के हाथ का दबाव बढ़ गया था।

कैसी थी वह घड़ी जिसमें शीला के प्रतिवाद की शक्ति ही समाप्त हो गयी थी। कैसे उसे भी यह लग गया था कि अब इस सम्बन्ध में कोई 'रिस्क' लेना सचमुच ठीक नहीं था, और जो कुछ हो

रहा था वही ठीक था। पता नहीं वह कैसा उन्मादक क्षण था जिसमें उसने आंसू-भीगे शब्दों में कह दिया था, "ठीक है, शेखर, यदि तुम इसी तरह हमारे सम्बन्ध पर गांठ देना चाहते हो, तो मुझे कोई एतराज नहीं, पर इतना समझ लो, औरत इस प्रकार जिसकी एक बार हो जाती है वह जिन्दगी भर के लिए···" और इसके बाद उसके मुंह से और शब्द नहीं निकल सके थे।

'नहीं, सुरेश, नहीं, अब मैं तुम पर जूठे अर्घ्य नहीं चढ़ा सकती।' राजघाट पर अपनी नाव से उतरती शीला के अन्तर में ज्वालामुखी का फिर एक बार विस्फोट हुआ था, 'तुम मेरे प्यार के पहले और अन्तिम देवता थे और मैं तुमको अपनी छाया से भ्रष्ट नहीं करना चाहती। नहीं, मुझे शेखर से प्यार नहीं, पर कुछ है ऐसा जो मुझे उससे अलग नहीं होने देता। काश, तुम औरत की बेबसी समझ पाते ! खैर, मुझे अफसोस केवल इतना है कि तुमने जिसे देवी मानकर पूजना चाहा था, वह अब एक ऐसी पतिता है जिस पर तुम थूकना भी नहीं चाहोगे। मैं जानती हूं, सुरेश, कि तुम महान् हो और अगर मैं ऐसे सैकड़ों पाप करके भी तुम्हारे समक्ष आऊं, तो तुम मुझे माफ कर दोगे और ऐसा ही तुमने अपने पत्र में लिखा भी था : 'मैं जानता हूं, शीला, कि तुम शेखर के साथ बहुत आगे बढ़ गयी हो और शायद अब तक सभी सीमाओं का उल्लंघन भी कर चुकी हो, फिर भी मैं तुम्हें एक और मौका देता हूं। अगर अब भी तुम मेरे पत्र का स्वीकारात्मक उत्तर दो, तो मैं सब कुछ भूलकर तुम्हें अपनाने को तैयार हूं।' हां, मैं जानती हूं, सुरेश, कि तुम मुझे माफ कर दोगे। मैं जानती हूं कि नीलकण्ठ बनकर तुम सारा हलाहल पी जाओगे। पर मेरा भी तो कुछ कर्तव्य है ? मैं यह कैसे बर्दाश्त कर सकती हूं कि मेरी प्रेरणा का एकमात्र आधार, मेरे सपनों का एकमात्र साथी और मेरी अराधना का एकमात्र अधिकारी मेरे ही हाथों का दूषित स्पर्श पा मेरी ही आंखों में गिर जाय। तुमको अभी-अभी डाले पत्र में मैंने यह अवश्य लिख दिया है कि मेरा तुमसे कोई सम्बन्ध नहीं और मैं नहीं चाहती कि भविष्य में तुम मुझे कोई पत्र लिखो और इसके बाद मैंने अपने को यह भी समझाना चाहा था कि तुम्हारे लिए मेरे अन्दर अब कहीं कुछ नहीं पसीजता, पर यह सब झूठ है। सुरेश, सब झूठ है। यदि सच है। तो केवल इतना कि शरीर मेरा चाहे जिसका हो, पर मन जो मेरा एक बार तुम्हारा हुआ, वह अब और किसी का होने से रहा। और हां, सुरेश, तुम्हारे आदर्शों की जिस ऊंचाई को मैं अपनी दृष्टि सीमा में नहीं बांध सकी, आशा है तुम मेरे लिए उससे नीचे गिरने का प्रयत्न न करोगे।'

गंगा का पानी छल-छलकर बह रहा था। शीला की नाव तट से लग चुकी थी, पर उसके दिल में लग रहा था, शायद वह किसी गलत घाट पर आ लगी है। ●

प्याज के छिलके

गुरुबचनसिंह

एक पेड़ की छांव तले उसने चारपाई बिछा दी, और बोला, "बाऊजी, आप इस पर इत्मीनान से कुछ देर आराम करें। खाना जल्दी ही तैयार हो जायेगा। मैं भी आपके पास बैठता हूं। आपसे 'मुलक' की खबर सुनूंगा। यहां परदेस में रहते-रहते तो गेहूं के खेतों को भूल ही गया। अब तो कुछ भी याद नहीं।"

वह मेरे निकट हरी-हरी घास पर बैठकर प्याज छीलने लगा। अपनी बात जारी रखते हुए उसने कहा, "अब तो परदेस ही अपना 'मुलक' है। जिन्दगी के जो चार दिन रह गये हैं, यहीं बीतेंगे। मेरे-जैसों की जिन्दगी भी क्या कोई जिन्दगी होती है, बाऊजी, जो जीकर भी मुरदों-जैसा होता है।" उसने गहरी सांस ली।

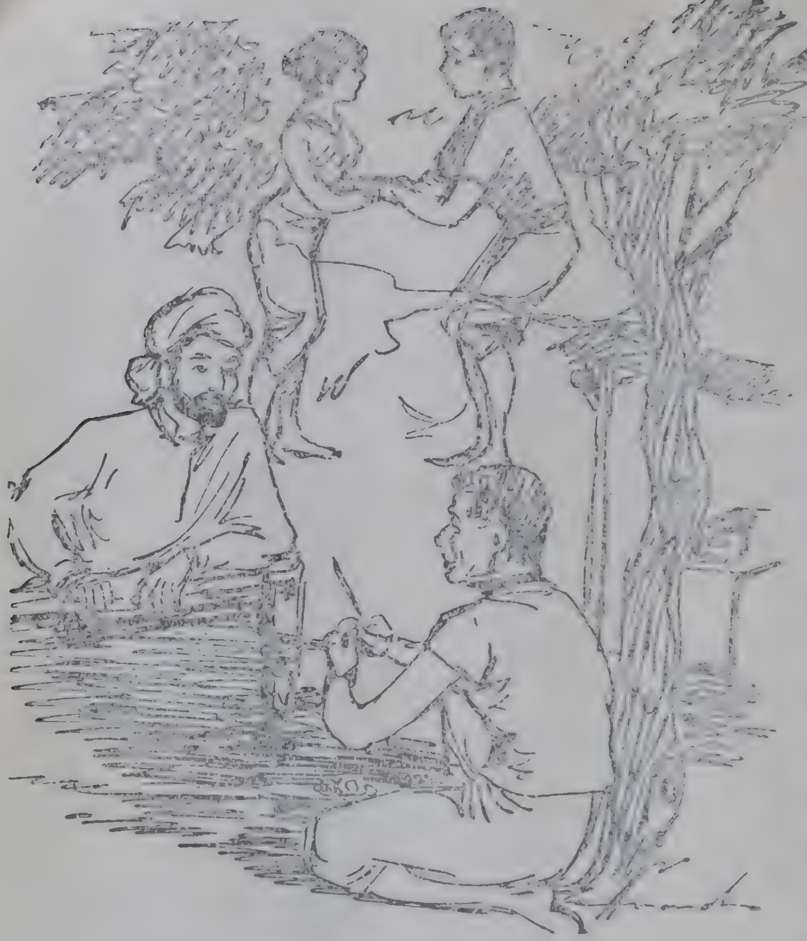
मैं चुपचाप उसकी ओर देखता रहा। उसने एक बार उस बच्चे की ओर देखा, जो झाड़ियों की ओट एक झटकाये हुए मुरगे के पर नोच रहा था। उसका साहस बढ़ाते हुए वह बोला, "शाबास बेटा! फटाफट काम रेडी कर दे। बाऊजी को भूख लगी है।" और मेरी ओर देखकर मुस्कराया, "इस बच्चे से काफी मदद मिल जाती है, बाऊजी।" फिर उसने गहरी सांस ली, "इसक के मारे हुओं का क्या ठिकाना है? क्या जिन्दगी है उनकी, बाऊजी। लगता है, किसी 'जनम' में कोई पाप किया था, जिसकी सजा अब भुगत रहे हैं।" प्याज छीलते-छीलते उसके हाथ रुक-से गये और हौले से फुसफुसाया, "औरत का दिल भी प्याज के माफिक होता है, बाऊजी। बस, छीलते जाओ, छीलते जाओ। आखिर तक परदा ही परदा है। भेद की गुठली कहीं नहीं मिलेगी।"

मैं समझ गया वह किसी कहानी की भूमिका बांध रहा है।

वह कह रहा था, "मैंने भी उसके दिल के छिलके उतारे थे। उसके दिल की थाह पाने की कोशिश की थी लेकिन बड़ा 'मूरख' बनना पड़ा। जानते हैं, मैं किसकी बात कर रहा हूं?"

मैंने जिज्ञासापूर्ण दृष्टि से उसकी ओर देखा।

वह प्याज काटने लगा और बोला, "मैं चन्नो की बात कर रहा हूं। आप भी कहेंगे, चन्नो कौन? चन्नो उसका असली नाम नहीं था। मैं प्यार से उसे चन्नो कहता था। वैसे उसका असली नाम था 'चैती।' वह यहीं की रहने वाली थी। रात की चांदनी-जैसा उसका रंग था। इसी लिए मैं उसे प्यार से चन्नो कहकर पुकारता था।"



"जानते हैं, बाऊ-जी ।" अपना स्वर बदलकर वह बोला, "जब मैं शुरू-शुरू में यहां आया, तो एक ट्रक 'डलेवर' का हेलपर बनकर आया था । तब वह सामने वाला जंगल कटता था । तभी मेरी चन्नो से पहली-पहली मुलाकात हुई थी । उसका बाप एक गरीब आदमी था । खुद भी यहां लकड़ी ढोता था, और लड़की से भी यही काम करवाता था । लोग उससे हंसी-मजाक करते थे । मुझे जाने क्यों यह सब देखकर बुरा लगता था । मैं चन्नो को रहम की नजर से देखता । वह भी मुझे बड़े गौर से देखती थी । मुझसे बेसमझी में कोई इशारा हो जाता, तो वह देखकर मुस्करा देती । मेरा दिल बेचैन हो उठता···।"

इतने में वह लड़का एक मैली-सी सिलवर की थाली में साफ की हुई मुरगी ले आया ।

बघेलसिंह थाली की ओर देखता हुआ बोला, "टुकड़े बड़े-बड़े रखे हैं न ?" फिर वह उन टुकड़ों को छूता हुआ बोला, "ठीक है । जा चूल्हा ठीककर!" और वह

वह मेरी ओर देखकर मुस्कराया । उसकी आंखों में जिज्ञासा थी, इस बात की कि उसकी कहानी में कोई दिलचस्पी ले रहा हूं या नहीं । मैंने उसकी सादगी पर होठों में मुस्करा दिया । उसे इस बात की तसल्ली हो गयी कि मैं उसकी बातों में दिलचस्पी ले रहा हूं । लेकिन दिलचस्पी के बजाय उस समय मैं भूख ज्यादा महसूस कर रहा था । सोच रहा था, खाना मुझे जल्दी ही खाने को मिल जाय, तो आगे के सफर की तैयारी करूं ।

अदरक छीलता हुआ फिर अपनी कहानी सुनाने लगा, "बाऊजी, आदमी के बर्दाश्त की भी हद होती है। एक दिन मैंने मौका पाकर चन्नो को करंज की घनी झाड़ियों के पीछे छेक लिया।"···

'क्यों रे, मुझसे मजाक क्यों करती है। जो मन में है वह साफ-साफ क्यों नहीं कहती ?'

चन्नो सहमी-सहमी-सी भोलेपन से बोली, 'क्या ?'

'जो तेरे मन में है, बोल। क्या हम से शादी करेगी ?'

'धत् !' आंखें नीची करके चन्नो लजायी-सी बोली, 'हमारे बाबा से पूछो !'

'ठीक है, हम तेरे बाबा से ही बात कर लेंगे। तू तो राजी है न ?'

'हां'

···बघेलसिंह ने अपनी बात जारी रखी' ,तब मैंने 'डलेवर' मिलखासिंह को बीच में लिया। उसके बाप से बातचीत की। वह बड़ी मुश्किल से चन्नो का हाथ मेरे हाथ में देने को तैयार हुआ। उसकी कीमत उसे पांच सौ रुपये देनी पड़ी। साथ ही यह लिखकर देना पड़ा कि इस इलाके को छोड़कर कहीं नहीं जाऊंगा। और न ही मैं चन्नो को अन्य किसी आदमी के हाथ बेचूंगा।" वह हौले से फुसफुसाया, "यहां तो यह सब भी हो जाता है, बाऊजी।"

मैंने उसकी बात पर कोई आश्चर्य प्रकट नहीं किया। हलकी-सी आह भरकर वह फिर अपनी कहानी कहने लगा, "इनसान का मन भी कितना कमजोर होता है, बाऊजी। दो आंखों के सामने मजबूर हो जाता है। हार मान लेता है। सो मैंने भी समझे-बूझे बिना सब मंजूर कर लिया था।"

वह लड़का फिर उसके पास आया और बोला, "मसाला पीसूं ?" उसकी भाषा साफ नहीं थी।

उसने कतरे हुए प्याज, अदरक, मिर्च और धनिया उसके हाथ में थमाते हुए कहा, "हां, जाओ पीसो।" और अपनी जगह से उठता हुआ बोला, "मैं आया, बाऊजी।"

वह मेरे पास से उठकर चला गया तो मैं सोचने लगा, अजीब आदमी से पाला पड़ा है। मुझे यों अपनी कहानी सुना रहा है, जैसे मैं उसका कोई गमख्वार होऊं। मैंने अनुभव किया, जो भी हो बघेलसिंह एक दिलचस्प आदमी है। हृदय का उदार है। मुझे होटल का ग्राहक समझने की अपेक्षा मेहमान कहा है। और अब भी वह मेहमाननवाजी-जैसा ही सलूक कर रहा है। मुझे आश्चर्य हुआ, एक छोटे-से जंगली कसबे के निकट सड़क के किनारे, जहां उसके रिश्ते, जात-बिरादरी या गांव का कोई आदमी नहीं है, वहां वह किस प्रकार रह रहा है, और होटल भी चला रहा है। वह इलाका जंगलों से घिरा हुआ था। बीच-बीच में कहीं-कहीं छोटे-छोटे गांव थे जिनमें प्रायः आदिवासी ही रहते थे। वहां उसके ग्राहक, बस या ट्रक के ड्राइवर या इक्के-दुक्के मुसाफिर ही हो सकते थे। उसकी आमदनी क्या होती

होगी और उसका गुजारा कैसे चलता होगा ? जैसा कि उसने अपनी कहानी आरम्भ करने से पहले ही मुझे अपना परिचय देते हुए बताया था, वह यहां दस-बारह साल से रह रहा है। और यहां के वातावरण में पूर्णतः ढल-सा गया है। लेकिन इससे क्या होता है ! उसके संस्कार तो नहीं बदल सकते थे। वह यहां कैसे रह रहा था, यही मेरे लिए आश्चर्य की बात थी।

दोपहर सिर पर थी। सामने खुलासा मैदान था, जिधर से गरम हवा के कुछ झोंके आने लगे थे। मैदान से परे जंगल था। उसके पीछे से उचक-उचककर झांकती पहाड़ की चोटियां। जंगल में शायद पलाश के फूल खिल रहे थे, जैसे अंगारे दहक रहे हों। मुझे यह दृश्य बड़ा सुन्दर और मनमोहक लगा।

बघेलसिंह अपनी तहमदनुमा धोती से गीले हाथ पोंछता हुआ आया और मुस्कराता हुआ बोला, "मुरगा एकाध घण्टे में तैयार हो जायेगा, बाऊजी। फिर झट से रोटियां सेंक दूंगा। इतनी देर आप उठकर टहल लें। चलिए, सामने के जगल से हो आयें।"

मैंने समय काटने के लिए घूमना कुछ उचित समझा। इसलिए उसके साथ हो लिया।

कुछ दूर वह मेरे साथ खामोश-सा चलता रहा। वह इधर-उधर कुछ इस प्रकार नजरें दौड़ा रहा था, जैसे उसकी आखें कुछ तलाश कर रही हों। मेरा अनुमान सच ही निकला, क्योंकि वह कह रहा था, "इधर आता हूं न, बाऊजी, तो ऐसा भ्रम होने लगता है, जैसे अभी कुछ दिखायी दे जायेगा। लेकिन···!" वह फीकी-सी हंसी हंसा, "औरत की जात तो हरजाई होती है। चन्नो की पूरी कहानी तो आपको सुनायी ही नहीं, आप कैसे समझिएगा। मैं तो कभी-कभी उसका नाम लेना भी पाप समझता हूं। लेकिन जाने कैसे आपके सामने मुंह खुल गया। जी चाहता है, अब पूरी कहानी सुना ही दूं, वरना आप जाने क्या सोचें। मैंने चेतनी को बड़े प्यार से रखा। उसे चन्नो कहकर पुकारने लगा। उसके लिए घरबार और मुलक छोड़ दिया। यहीं बस गया। कुछ पैसा लगाकर होटल खोला, और एक नयी जिन्दगी शुरू की। मैंने उसे सब कुछ दिया जो दे सकता था।"

आगे बढ़कर उसने पलाश के फूलों का एक गुच्छा तोड़ लिया। अपनी कहानी उसने जारी रखी, "देखिए, जंगली फूल कितने खूबसूरत होते हैं। लेकिन यहीं खिलकर यहीं पर ढेर हो जाते हैं। इलाके की रहनेवालियां भले ही तोड़कर जूड़े में खोंस लें, वरना कोन इनकी तरफ आख उठाकर देखता है। और जब चन्नो इसे अपने जूड़े में सजाती थी, तो ऐसा लगता था, जैसे उसके सिर पर अंगारे चमक रहे है। उसका सांवला-सा रूप जगमगा उठता था।" उसने पलाश का एक फूल मेरी ओर बढ़ा दिया। मैं उसे हाथ मे लेकर सोचने लगा, क्या सच मे इन फूलों के माध्यम

से उस वनमाला के सांवले रूप की कल्पना की जा सकती है ?

"आपको भूख तो बड़े जोर की लगी होगी, बाऊजी ?" मेरी भावना को कुरेदता हुआ वह बोला, "लेकिन मजा भी खाने का तब ही आता है, जब भूख के कारण मन की बेचैनी बढ़ जाय। मैं इसी लिए आपको यहां ले आया और बेकार की बकवास से आपका दिमाग चाटने लगा, वरना चन्नो की कहानी में आपकी क्या दिलचस्पी ?" वह मेरी ओर देखकर मुस्कराया। उसके चेहरे पर जिज्ञासा के भाव थे।

"कितना अच्छा लगता है यहां !" वह दूर तक अपनी नजरें फैलाता हुआ बोला, "बीते दिन याद आने लगते हैं। चन्नो को इस जंगल में घूमने का बड़ा शौक था। अकेली ही यहां चली आती थी। कभी लकड़ी चुनने के बहाने' कभी फूल के बहाने। कभी महुआ चुनने के बहाने, तो कभी चिड़ियों के शिकार के बहाने। वह खुद भी तो एक चिड़िया थी। बाऊजी, आपने वह गाना सुना होगा। बाइस्कोप का गाना। हम लोग छोटे थे, तब सुनते थे···'मैं बन की चिड़िया बनबन डोलूं रे'···बस, इससे आगे मुझे कुछ नहीं आता। मैं कभी-कभी चन्नो को यही गाना गाकर सुनाता। वह हंसने लगती। मुझे डर लगता। बन की चिड़िया कहीं उड़ न जाय! फुर्र से कहीं उड़ गयी, तो कुछ पता नहीं चलेगा। भला आप ही बोलिए, इस जंगली इलाके में किसी को कुछ पता

चलेगा ? सो, मैं उस पर हमेशा नजर रखता।"

उसने आगे कहा, "साल भर में ही वह एक बच्चे की मां बन गयी। तब मुझे कुछ धीरज बंधा। अब पंछी के पर कट गये। चिड़िया बच्चे के बिना उड़कर कहां जा सकेगी ?"

उसके चेहरे पर सन्तोष और हर्ष के भाव उभरे, जैसे वह खुशियों की पुरानी दुनिया में पहुंच गया हो। उचककर उसने एक पेड़ की झुकी हुई छोटी-सी डाल तोड़ ली, जिसमें लाल रंग के धब्बों वाले हरे रंग के पत्ते थे। उसकी यह बचकानी हरकत मुझे कोई बुरी नहीं लगी। मैं देख रहा था, उसके अन्दर का जोश उमड़ा पड़ रहा है। वह पुरानी दुनिया में जो लौट गया था। लेकिन यह मूड अधिक देर तक नहीं रह सका। वह कुछ उदास से स्वर में बोला, "बाऊजी, कभी-कभी मुझे ऐसा लगता था, जैसे चन्नो को अपने घर में रखकर मैंने उससे कोई बेइनसाफी की है। उसे अपनी जात-बिरादरी वालों के यहां जाना चाहिये था, जिनके पास खेत होते, नदी का किनारा होता, जंगल में चराने के लिए भेड़-बकरियों का रेवड़ होता। परब-त्योहार में नाचती-गाती, हंस-हंसकर जीवन की खुशियां मनाती। यह सोचकर मुझे शक लग जाता था कि वह मुझे कहीं छोड़कर भाग न जाय।

"जानते हैं ?" क्षणभर के लिए रुककर उसने मेरी ओर आशयपूर्ण दृष्टि से देखा, जैसे वह मेरी आंखों में मेरे मन के विचारों की झलक देखना चाहता हो। और शायद उसने देखा, भूख के कारण मेरी उन आंखों में थकान है। वह मुझसे नजरें न मिला सका और कहने लगा, "बाऊजी, मैंने कहा था न, चन्नो बरस भर में ही एक बच्चे की मां बन गयी थी। लड़का मुझ पर गया था। मेरे-जैसा ही रंग था। वह उस बच्चे को सीने से लगाये रखती थी। मुझे विश्वास हो गया था कि अब वह मुझे छोड़कर कहीं नहीं जायेगी। मां को बच्चे का मोह बहुत-कुछ करने से रोक दिया करता है। मैं बहुत हद तक बेफिक्र हो गया।"

वह मुझे जंगल में कहां, किस ओर लिए जा रहा था, कुछ समझ में नहीं आ रहा था। हम सड़क या होटल से काफी दूर आ चुके थे। आगे-पीछे, अगल-बगल, चारों ओर जंगल ही जंगल था, जहां नाना प्रकार के पक्षियों का कलरव सुनायी दे रहा था। एक जगह जाकर वह रुक गया, बोला, "जरा नीचे तो झांककर देखिए।"

जहां हम खड़े थे, वहां से चन्द कदम के फासले पर एक खाई थी। नीचे काफी दूर तक फैलती चली गयी थी। वहां भी पेड़ थे और जंगल। मेरी समझ में नहीं आया, बघेलसिंह मुझे इस खाई के पास क्यों ले आया ? अगर उसकी नीयत पर जरा भी शक किया जा सकता, तो समझना पड़ता, वह मुझे मारने और मेरा सब कुछ छीनने के लिए यहां लाया है !

वह बैठता हुआ बोला, "यहां बैठकर

जरा पहाड़ों का आनन्द लीजिए। देखिए, कैसी मजेदार हवा चल रही है।"

मैं अनमने भाव से उसके निकट बैठ गया, और कोई चारा भी नहीं था। उसकी कहानी दिलचस्प थी। लेकिन भूख भी कम नहीं थी। सोच रहा था, उसके यहां खाने के लिए न ठहरता तो ठीक ही था। लेकिन उस स्थान का मुझे ज्ञान ही नहीं था कि कहीं और भी खाना मिल सकता है। इसलिए उसके यहां ही रुकना पड़ गया।

वह कुछ क्षण तक छोटे-छोटे कंकड़ उठाकर नीचे ढलान में फेंकता रहा, और फिर संजीदगी से बोला, "किसी-किसी औरत का दिल भी अजीब होता है, बाऊजी। वह अगर सामने की तरफ देखने की बजाय पीछे की ओर देखने लगे, तो घर की दुनिया ही बदल जाती है। चन्नो के गरीब मां-बाप अक्सर उससे मिलने के लिए आ जाया करते थे। और जब वे यहां से जाते, कुछ लेकर जाते। चन्नो मुझसे बिना पूछे ही उन्हें पेटी में से रुपये निकालकर दे देती। मैं देखता हुआ भी कुछ न कहता।"

वह थोड़ी देर रुककर कुछ सोचने लगा था, फिर कहा, "जब वह लड़के की मां बन गयी, तो मैंने उसे गम्भीर बनने को कहा। घूमने-फिरने से मना किया। नशा न पीने की ताकीद की। सुनकर वह चुप रही, लेकिन मुझे बुरी तरह घूरती रही।"

उसने गहरी सांस ली और पास पड़े बड़े-बड़े ढले उठा-उठाकर नीचे फेंकने लगा। दस-पन्द्रह मिनट तक वह पत्थर फेंकने का अभ्यास-सा करता रहा और मैं देखता रहा, वह किसे लक्ष्य करके पत्थर मार रहा है। नीचे जहां-तहां घने-घने पेड़ों का समूह था। बीच-बीच में छोटे-छोटे खेत, जैसे प्रायः पहाड़ी जगहों पर होते हैं। खेतों में धान लहरा रहा था। शायद उन खेतों में धान की खेती बारहों महीने होती थी, क्योंकि छोटे-छोटे नालों में स्रोतों का पानी कल-कल करता दिखायी दे रहा था।

मैं प्रकृति का आनन्द लेने लगा था कि उसकी खामोशी टूटी, "बाऊजी, अगर औरत चुप रहे और वह मर्द से बात न करे, तो समझना चाहिये वह नाराज है, या अन्दर ही अन्दर दिल में जहर घोल रही है। आप भी कहेंगे, मैं कैसा मूरख हूं, आपको ऐसी बातें समझाने चला हूं। भला क्या आप यह सब नहीं जानते होंगे! मैं भी तो जानता ही था कि चन्नो को मेरी बात अच्छी नहीं लगती है, फिर भी गलती कर बैठता था। पहले वह मुझसे पूछकर जंगल की ओर जाती थी, अब नजर बचाकर जाने लगी। पहले बताकर हड़िया पीती थी, अब आंख चुराकर पीने लगी। मैं जो उसे एक अच्छी औरत और बेटे को एक शानदार आदमी बनाने के सपने देख रहा था, वह मिट्टी में मिलते नजर आये। मैं सोचने लगा, अगर सख्ती से चन्नो को अपने हुक्म के अन्दर न रखा, तो आगे चलकर पछताना होगा।"

"सो एक दिन जब वह बाहर से आयी, तो मैंने उससे बिना कुछ पूछे ही डण्डे से उसकी खूब मरम्मत की। इसी प्रकार एक दिन जब वह नशा पीने जा रही थी, तो मैंने कटोरा उसके हाथ से छीनकर परे फेंक दिया। उसके मुंह पर दो-चार तमाचे भी जड़ दिये। वह उस दिन मुझे इस तरह घूरने लगी, जैसे मेरा मुंह ही नोच लेगी। लेकिन बोली फिर भी कुछ नहीं।"

वह दूर खड़ी रेवड़ चराने वाली एक लड़की की ओर देखकर मुस्कराया और उठ खड़ा हुआ, बोला, "चलिए, अब चलें।"

मैं साथ हो लिया। फिर आगे-आगे वह था और पीछे-पीछे मैं। हम उसी रास्ते पर हो लिये, जिससे आये थे। वह इस प्रकार आगे बढ़ रहा था, जैसे कोई थका हुआ मुसाफिर मंजिल की दूरी का एहसास लिये ठिकाने की ओर बढ़ता है।

"जानते हैं, फिर क्या हुआ?" वह मेरी ओर देखकर मुस्कराया, "चन्नो ने घूमना-फिरना बन्द कर दिया, और हड़िया को हाथ लगाना पाप समझने लगी। उसमें यह तबदीली देखकर मुझे बड़ी खुशी हुई। मैं उसे पहले से अधिक प्यार करने लगा।"



ऐसा लगा, बघेलसिंह की कहानी यहीं खत्म हो जायेगी। और हो भी जानी चाहिये थी, क्योंकि अब मुझसे भूख बर्दाश्त नहीं हो रही थी। जी चाहता था, पेड़ों के पत्ते नोच-नोचकर खा जाऊं। लेकिन उसके चेहरे की मुस्कान देर तक नहीं रही। वह पहले की तरह गम्भीर होकर बोला, "औरत के सामने मर्द बेवकूफ बन जाता है। पूरा उल्लू, आप पूछेंगे, कैसे? तो सुनिए। मैं उससे पहले से ज्यादा

प्यार दर्शाने लगा, तो वह और भी मुझसे प्रेम करने लगी। और होटल में आये लोगों में दिलचस्पी भी अधिक लेने लगी। उन्हें देखकर मुस्कराने लगी। पहले तो मैंने उसकी इस हरकत पर ध्यान नहीं दिया, लेकिन जब वह आये-गयों के साथ हंस-हंसकर बातें करने लगी, तो मुझे फिर पहले की तरह अखरा। एक दिन मैंने उसे फिर डांटा। मारने के लिए हाथ भी उठाया, लेकिन फिर कुछ सोचकर हाथ रोक लिया।"

"काश! मैंने उसे जान से मार दिया होता।" वह अपने दोनों हाथ मलता हुआ बोला, "इन्हीं हाथों से गला घोंट देता।" उसके चेहरे पर क्रूरता के भाव जागे। आंखों में अंगारे-से दहकने लगे। "काश!"

लेकिन फिर जैसे उसे अपनी स्थिति का ज्ञान हुआ और वह बोला, "नहीं, नहीं, ठीक ही हुआ। उसे मारकर मुझे क्या मिल जाता। जो करता है, सो भरता है। भगवान देखने वाला है। मैंने उसके साथ कोई अन्याय नहीं किया था।"

वह फिर खामोश हो गया। हम आगे बढ़ते रहे। वह मुझे एक दूसरी पगडण्डी से ले जाने लगा। उस रास्ते में छोटे-छोटे टीले पड़ते थे, जिनके सिरों पर जगह-जगह सफेद दाग नजर आ रहे थे। ऐसा लग रहा था, जैसे कुछ बूढ़े माथा झुकाये किसी चिन्ता में लीन बैठे हुए हों।

वह शिष्टाचार के नाते बोला, "आपको मैंने पहली बार यहां देखा है। मेरा पता जरूर आपको किसी ऐसे आदमी ने बताया होगा, जो मेरे यहां से पहले खाना खा चुका है।"

मुझे लगा, जैसे वह मुझसे जानना चाहता है, क्या मैंने उसकी कहानी पहले भी किसी के मुंह से सुनी है? लेकिन सच तो यह है कि न तो किसी ने मुझे इस होटल का पता बताया था, और न मैंने पहले कभी किसी के मुंह से यह कहानी सुनी थी।

"भाई, एक जमाने में तो मेरा होटल, इस ओर आने-जाने वालों में कुछ इस तरह मशहूर हो गया था, जैसे कलकत्ता में सोनागाछी।" वह उदासीन स्वर में कहने लगा, "आने-जाने वाले बिना जरूरत के भी यहां ठहर जाते। चन्नो की एक मुस्कान पा कलेजा ठण्डाकर अपनी राह लगते। मुझे बहुत बुरा लगता।

"एक दिन एक 'डलेवर' गये रात यहां आया। मुझसे बड़ी मीठी-मीठी बातें करने लगा, जैसे वह मेरा कोई चचा-भतीजा हो। इसी बीच चन्नो एक-दो बार उसके सामने आयी, तो उसके बारे में मुझसे कुरेद-कुरेदकर बातें पूछने लगा। मुझे उसकी बातें अच्छी नहीं लगीं। उसने रात यहीं काटने का इरादा जाहिर किया। मैं 'हां' या 'न' कुछ न कह सका। लेकिन चन्नो ने उसके सोने का इन्तजाम बगल वाले झोंपड़े में कर दिया। मुझे यह बहुत बुरा लगा। लेकिन उस आदमी के सामने उससे कुछ नहीं कहा। उस रात मैं बिलकुल सो न सका।

"सवेरे जब वह मुसाफिर चला गया,

तो मैंने चन्नो को खूब पीटा। पीट-पीटकर उसे बेहाल कर दिया। मैं उसे मारते समय एक ही सवाल करता रहा, बता, आने वाला मुसाफिर तेरा क्या लगता है? तेरे नाम का उसे कैसे पता चला? तूने उसके सोने का इन्तजाम क्यों किया?

"उसने कोई जवाब नहीं दिया।

"उस दिन मैंने उसे इतना पीटा था कि कई दिनों तक मेरे हाथ दर्द करते रहे थे।"

वह चलता-चलता रुककर अपने सबल हाथों को देखने लगा।

"इन्हीं हाथों से पीटा था।" उसके शब्दों में पश्चात्ताप की भावना थी। "कभी-कभी मैं इन हाथों को बड़े गौर से देखने लगता हूं और सोचता हूं, क्या ऐसा करके मैंने ठीक किया था?"

"उस मार का नतीजा खराब ही निकला।" वह फिर कदम आगे बढ़ाने लगा। "चन्नो मुझसे रूठ गयी थी। कुछ दिन तक उसने मुझसे कोई बात ही नहीं की। फिर वह बात-बात पर मुझसे झगड़ने लगी।" उसने मेरी ओर गौर से देखा, "आप जानते हैं, जब औरत घर वाले से बात-बात पर उलझने लगे, तो आदमी बड़ा बेबस हो जाता है। सो, ऐसा ही मेरे साथ हुआ।"

उसने फिर गहरी सांस ली। चलता-चलता सामने पड़े पत्थरों को पैर की ठोकरों से सामने की ओर फेंकने लगा। उसकी यह हरकत उसके अन्दर की खीझ को प्रकट करने लगी। वह कहता गया, "उसका लोगों से हंसना-बोलना बढ़ गया। आने-जाने वालों से वह कुछ इस प्रकार घुल-मिलकर बातें करने लगी, जैसे वे उसके पुराने परिचित हों। मैं सोच में पड़ गया, अब क्या करूं? एक जो मारा-पीटा था, तो उसका नतीजा देख ही लिया। अब हाथ उठाने का साहस नहीं हो रहा था। मैं उससे और अधिक प्यार जताने लगा, ताकि उसके दिल से मेरी नफरत मिट जाये।"

अब मुझे उसकी कहानी में रस मिलने लगा था। मैं यह जानने के लिए उत्सुक हो उठा कि अब आगे क्या होगा?

वह खोयी-खोयी दृष्टि से चारों ओर देख रहा था, जैसे उसकी नजरें कुछ तलाश रही हों। पेड़ों के दरम्यान से सामने बलखाती हुई सड़क दिखायी दे रही थी। हम होटल, यानी उसके ठिकाने पर पहुंचने ही वाले थे। भूख और भड़क उठी थी। मेरी नजरें भी इधर-उधर भटकने लगीं। चारों ओर शून्य का-सा वातावरण था। पेड़-पौधे दम साधे खड़े थे। क्षण भर को वहां परायेपन का एहसास खटका। लेकिन शीघ्र ही बखेलसिंह के स्वरों ने मेरा ध्यान अपनी ओर खींच लिया। वह बोला, "बाऊजी, सच पूछिए तो मैं मन ही मन चन्नो से डरने लगा। उस पर मेरी नजर कड़ी हो गयी। कभी-कभी रात के समय मुझे ऐसा शक होता, जैसे वह बिस्तर पर नहीं है। मैं उठकर बैठ जाता। उसे सोया देख सन्तोष होता। अपने-आप

पर गुस्सा आता, मैं भी कैसा शक्की मिजाज आदमी हूं !

"एक दिन रात के वक्त बैठे-बैठ मैंने अपने मन में यह फैसला किया कि क्यों न यह जगह छोड़कर कहीं और चला जाऊं। इस इरादे को मैंने अपने एक नौकर के सिवा और किसी पर जाहिर नहीं होने दिया। सोचा था, चन्नो को चाईबासा या टाटा की ओर ले जाऊंगा और फिर कभी इस ओर नहीं आने दूंगा।"

हम सड़क पर आ गये थे, जहां खाली बोरों से लदा मेरा ट्रक खड़ा था। ट्रक के निकट जाने कहां से कुछ बच्चे आकर खेलने लगे थे। बघेलसिंह उनकी भाषा में रुक-रुककर कुछ बोला। बच्चे भयभीत-से मेरी ओर देखने लगे और फिर एक ओर भाग खड़े हुए।

बघेलसिंह हंसने लगा। हंसता रहा। मुझे शक होने लगा, उसमें पागलपन भी है। लेकिन फौरन ही उसके चेहरे की मुद्रा गम्भीर हो गयी, "बाऊजी, मैंने बेकार ही इन बच्चों को डरा दिया। जानते हैं, मैंने इन्हें क्या कहा था ?" वह हंसकर बोला, "अरे बच्चो, ये सरदारजी तुम सबको बांधकर यहां से शहर ले जायेंगे। ये शहर के नाम से बहुत डरते हैं। देखा, किस तरह दुम दबाकर भागे। लेकिन एक चन्नो···!" शोकातुर होकर उसने फिर अपनी कहानी आरम्भ की, "उसे शहर से आने-जाने वाले लोगों से डर नहीं लगता था।"

हम ठिकाने पर वापस लौट आये थे। उसकी बात अधूरी ही रह गयी। उसने फिर मुझे बिछी हुई चारपाई पर बैठ जाने को कहा और लड़के को बुलाकर पूछा, "मुरगा तैयार हो गया ?"

लड़के ने फिर भोंडी-सी आवाज में कहा, "हां !"

"तो, बस, ठीक है !" बघेलसिंह मुझसे बोला, "मैं गरम-गरम रोटियां सेंकता जाऊंगा और आप खाते जाइएगा।" और फिर उसने लड़के से पूछा, "आटा तैयार है ?"

लड़के ने उसी ढंग से उत्तर दिया, "हां !"

उसने अभी तक अपनी कहानी शेष नहीं की थी। मेरे मन में एक उत्सुकता जगाकर वह अपने काम में लग गया। दस-पन्द्रह मिनट के बाद मुझे खाना परोस दिया गया। मैं अपनी भूख मिटाने लगा। गरमागरम रोटियां आती रहीं और मैं खाता रहा। भूख की सारी कसर निकालने लगा। खाना अच्छा ही बना था।

आध घण्टे में भोजन समाप्त हो चुका था। उधर दोपहर ढल चुकी थी। मेरे लिए और ठहर सकना मुश्किल था। अभी चालीस मील पहाड़ी सफर बाकी था। हेल्पर जो बीमार हो जाने के कारण पीछे छूट गया था, उसकी भी चिन्ता थी। ठिकाने पर पहुंचकर उसके लिए कुछ करना था। खाने के बाद मैंने मुश्किल से आध घण्टा आराम किया होगा कि फिर सफर के लिए उठ खड़ा हुआ।



वह मेरे पास आया, तो मैंने उसे पांच का नोट दिया।

उसने अनिच्छा से उसे स्वीकार किया। क्योंकि वह मुझसे खाने के पैसे नहीं लेना चाहता था।

वह उदासीन स्वरों में बोला, "आपने यह तो सुना ही नहीं कि चन्नो ने मेरे साथ क्या किया !" वह ट्रक तक मेरे साथ आया, "एक रात उसने दूध में कोई जहरीली जड़ी मिलाकर मुझे पिला दी। मुझसे तब तक प्यार करती रही, जब तक मैं गहरी नींद सो नहीं गया। सवेरे तक सोया ही रहा। जब आंखें खुलीं, तो देखा, सामने ढाई-तीन बरस का बच्चा बैठा रो रहा है, और चन्नो घर में नहीं है।

"वह रोते हुए बच्चे को छोड़कर कहां जा सकती है ? मुझे इतनी गहरी नींद क्यों आ गयी ? मुझे उठने में देर क्यों हो गयी ? अनेक-अनेक बातें मेरे दिमाग में घूम गयीं। मैं घर से बाहर निकला। इधर-उधर देखा। उसे आवाज दी। लेकिन कोई जवाब नहीं मिला।

"मैं फिर घर में आया तो देखा, उसके कपड़े-लत्ते भी नहीं थे। मुझे शक हुआ, कहीं वह भाग तो नहीं गयी ? लेकिन बच्चे को छोड़कर वह कैसे भाग सकती है। मैं उसका इन्तजार करने लगा।" कहते-कहते बघेलसिंह का स्वर भर्रा गया, "और आज तक उसका इन्तजार ही कर रहा हूं ! वही उसका नाम पूछने वाला डलेवर ही उसे उड़ा ले गया था।"

मेरा दिमाग काम नहीं कर रहा था। यह कहानी सुनकर बघेलसिंह से क्या कहूं ? सहानुभूति के दो शब्द अवश्य ही उसके

आहत हृदय पर मरहम का काम कर सकते थे। सो मैंने ऐसा ही किया।

जब ट्रक स्टार्ट किया और वह धीरे-धीरे आगे बढ़ने लगा, तो बघेलसिंह साथ चलता हुआ धीरे-से बोला, "हां एक बात बताना तो भूल ही गया। यह जो लड़का मेरे साथ है न, मेरा बेटा है। मैंने कभी इसे इसकी मां की कहानी नहीं सुनायी।"

मैंने देखा, दो आतुर भूखी आंखें झोंपड़े के साये में खड़ी मेरी ओर निहार रही थीं। मैं कुछ क्षण उसकी ओर देखता रहा।

ट्रक काफी आगे बढ़ आया था। मैंने गीयर बदलकर मोटर को तेज करते हुए बघेलसिंह से विदा ली।

मैं अकेला ही सफर कर रहा था। लेकिन अब ऐसा लग रहा था, जैसे मैं अकेला नहीं हूं। बघेलसिंह भी मेरे बगल में बैठा अपनी कहानी सुना रहा है। उसकी आवाज अब भी मेरे कानों में गूंज रही थी। झाड़ियों तथा पेड़ों के पत्तों की प्रत्येक सरसाहट मुझे चौंका-सी देती थी। ऐसा लग रहा था, चन्नो यहीं कहीं घूम रही है···और वह अचानक ही मुस्कराती हुई सड़क के बीचोबीच आ खड़ी होगी। उसका एक कल्पित रूप मेरी आंखों के सामने घूम रहा था, और मुझे सारा जंगल उदास नजर आ रहा था। ●

हालात बदले हैं, लहजा बदला है

हाल के पाकिस्तान के हमले और उसकी पराजय के बाद आपस में लोगों के मनोविनोद करने का लहजा बदल गया है। दो झलकियां प्रस्तुत हैं।

लखनऊ के एक काफीहाउस में गम्भीर साहित्यिक बहस चल रही थी। भूत, वर्तमान और भविष्य की पीढ़ियों के प्रतिनिधि वहां जमे हुए थे। एक सज्जन जो बहुत तेज बोलते थे, एक गंजे सज्जन को सम्बोधित करके कह रहे थे, "आप अपना प्रस्ताव वापस लीजिए, नहीं तो आपका सिर तोड़ दूंगा।"

गंजे सज्जन उठे और बाहर जाने वाले दरवाजे तक चुपचाप गये। फिर पीछे मुड़कर अपने साथियों की ओर तथा अपने 'शत्रु' की ओर देखा। फिर उसके करीब गये। धीरे-से पर लोगों को सुनाते हुए कहा, "जा, जा, तूने इस सिर को पैटन टैंक समझ रखा है क्या ?" और फिर दौड़ते हुए-से वे काफीहाउस से बाहर चले गये।

अब चलिए एक मिडिल स्कूल की आठवीं कक्षा में।···

अध्यापक : ज्ञानवान कौन है ?

विद्यार्थी : जो दूसरों को अपने-जैसा समझता है।

अध्यापक : एक उदाहरण दो।

विद्यार्थी : मियां भुट्टो।

अध्यापक : क्या बकते हो ? कैसे ?

विद्यार्थी : वे दूसरों को भी कुत्ता समझते हैं।

टाम, डिक और हैरी

आबिद सुरती

शरीर को गैसलाइट के खम्भे के सहारे टिका फनी माल स्टेशन के गेट के सामने बीड़ी के कश लेता खड़ा था। दृष्टि स्थिर। बेलार्डपियर की सड़क उसकी पीठ पीछे सो रही थी।

एक दिन के लिए डाक में रुके हुए स्टीमर 'विक्टरी' के टूरिस्टों के बाहर निकलने का समय हो चुका था।

थोड़ी दूर पर घोड़े को घास के साथ गुड़ के टुकड़े मिलाकर खिलाते हुए विक्टोरिया वाले उसमान ने उसकी सूखी आकृति को तिरछी आंखों से निहारा।

फनी की बन्द मुट्ठी में दबी हुई बीड़ी से निकलने वाली अंगड़ाइयां लेती धुएं की लहरें हवा की हलकी लहरों में उलझकर टूट जाती थीं। जब वह कश लेता, तो ऐसा लगता, मानो मुट्ठी को चूस रहा हो। इस प्रक्रिया में उसकी पसलियां फूलती और दम छोड़ते समय पंचर हुए टायर की तरह धीरे-धीरे बठ जातीं।

उसमान उसके निकट आकर खड़ा हो गया।

"क्यों रे, फनी!" अपने दोनों हाथों के बीच चाबुक को घुमाते हुए उसने कहा, "आज हम छह महीने पीछे मिले, नहीं?"

टोंटे को फेंक, बूट-तले दबाते फनी ने गेट पर दृष्टि स्थिर रखी। धूप से बचाव करती और बरसात में भी काम आने वाली उसकी फटी फैल्ट हैट की परछाई आधे चेहरे पर फैल रही थी।

उसमान ने एक हाथ लम्बाकर खम्भे पर टिकाया और दृष्टि आसमान की तरफ ऊंचीकर कहा, "साली अपनी जिन्दगी भी क्या है!" कहते-कहते उसने दृष्टि झुका दी, "कुत्तों-जैसी! बिलकुल जानवर-जैसी! जो कुछ मिले वह खाने का, न मिले तो औरत का जी खाने का··· फिर तेरी शादी का क्या हुआ?"

फनी की आंखें गेट के समीप आते टूरिस्टों के समूह के साथ घूम रही थीं। पुरुषों के कद ऊंचे और सशक्त थे। आधी पैण्ट और टी-शर्ट में वे प्रभावशाली लगते थे। एक अधेड़ की छाती पर दूरबीन झूल रही थी। उसके साथ चलती ऊंचे फ्राक वाली स्त्री ने रालीफ्लैक्स कैमरे की तनियां पकड़ रखी थीं।

खम्भे का टेका छोड़ फनी सतर्क हुआ। उसमान के चेहरे पर आशास्पद नेत्रों

से उसने निहारा और समूह के नजदीक दौड़ गया।

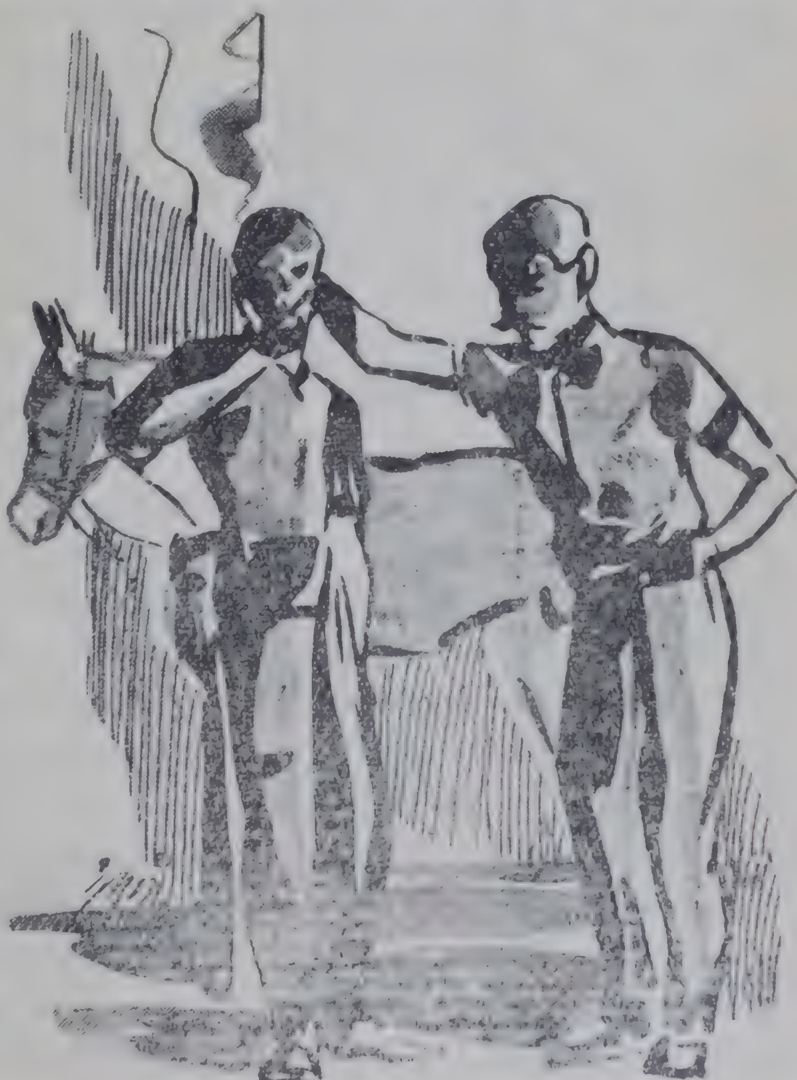
"हेलो टाम !" शब्दों का सस्मित उच्चारण करते हुए उसने अदब से हैट उठाया, "हेलो डिक ! हेलो हैरी ! हेलो मैडम ! एक दिन में बम्बई के सब लोकप्रिय स्थान दिखलाऊंगा।"

टूरिस्ट आगे बढ़े। वह साथ-साथ चला। "गेट-वे आफ इण्डिया, चौपाटी, आरे कालोनी, विहार लेक, नेशनल पार्क, कैनेरी केव्ज..."

धीरे-धीरे उसका स्वर डूब गया। टूरिस्ट सड़क पार-कर सामने के फुट-पाथ तक चले गये थे। निराश चेहरा लिये वह पीछे लौटा। वही खम्भे का टेका। वही गेट। दूसरी बीड़ी जलाकर उसने एक साथ तीन बार मुट्ठी को चूस लिया। छाती धुएं से भरकर खाली हो गयी। चेहरे के आस-पास छाये धूमिल वाता-वरण ने उसके और उसमान के बीच क्षण भर को एक नाजुक परदा खड़ा कर दिया और टूटकर उसमान ने कहा, "क्यों रे फनी !" उसे खामोश देख उसमान ने बात आगे चलायी, "तू तो दुल्हन को मेरी गाड़ी में बैठाकर घर ले जाने की बात करता था ?"

चुटकी बजाकर फनी ने राख झाड़ दी। चेहरा भावहीन रहा।

"मैं तेरा इन्तजार करता रहा। आज आये, कल आये, मगर तू नहीं आया तो नहीं आया।" कहता वह विक्टोरिया की तरफ दौड़ गया। घोड़ा धीरे-धीरे आगे



बढ़ रहा था। "हिच्...हिच्...हिच्! हा...आ...आ। साला कहां चला? गुड़ खाया, इसी से चरबी चढ़ी है।" लगाम खींची और चाबुक को बगल में दबाये वह पीछे फिरा।

फनी टेप रिकार्डर की तरह एक ही गति से बोल रहा था। उसके सामने एक टूरिस्ट युवक था। "हेलो टाम।" बाबा गाड़ी के साथ एक युवती भी। "हेलो मैडम! एक दिन में बम्बई के सब लोकप्रिय स्थान दिखाऊंगा। गेट-वे आफ इण्डिया...चौपाटी...आरे कालोनी..."

युवती ने एक बेवकूफ की तरह उसके चेहरे पर दृष्टि फेंकी—फैल्ट हैट, सूती चैक शर्ट और लम्बा पैण्ट। उड़ती नजरों से देखा और हलके से बाबा गाड़ी को धकेलती युवक के साथ आगे बढ़ गयी।

फिर एक बार निराश हो चुके फनी ने गेट की दिशा में चेहरा घुमाया। दो टूरिस्ट एक-दूसरे के कन्धे पर हाथ रखे मूर्ति की तरह सामने खड़े थे। एक प्रौढ़ था। भूरे स्टाइलिश सूट के कारण उसकी उम्र कुछ कम लग रही थी। कोट के बटन खुले थे। बीजापुर के गोलगुम्बज-जैसा उसका पेट पेटी की अवहेलनाकर बाहर निकल आया था। दूसरा जवान था। वह गुलाबी रंग का स्वेटर और टाइट ब्लू जीन्स पहने था।

फनी सहज चौंका।

"हेलो टाम!" हैट उठा उसने स्वाभाविकता से कहा, "हेलो डिक।" हर टूरिस्ट उसके लिए टाम, डिक और हैरी था। "एक दिन में बम्बई के सब लोकप्रिय स्थान दिखलाऊंगा। गेट-वे आफ इण्डिया, चौपाटी, आरे..."

"मैन, टुम गाइड?" प्रौढ़ बीच में बोल उठा।

फनी ने 'हां' कहा।

"हमको बम्बई डेकना मांगटा।" कहते-कहते उसने जवान की आंखों में देख आंखें फिरायीं। "हम वो बम्बई डेकना मांगटा जो यह बड़ा-बड़ा बिल्डिंग-जैसा खूबसूरट नहीं है। बोलो टुम डिकायेगा?"

उसने फिर स्वीकारात्मक उत्तर दिया।

"किटना पैसा?"

फनी ने सिर खुजलाते हैट को सिर पर रख लिया, "आप खुशी से जो दे देंगे।"

दोनों टूरिस्ट एक-दूसरे को प्रश्न-भरी दृष्टि से देखते विक्टोरिया में चढ़ गये।

उसमान को सचमुच दुःख हुआ। उसने हमेशा जोर देकर फनी को कहा था कि टूरिस्टों से पहले पैसे ठहरा लेने चाहिये। और फनी ने भी उसको एक ही उत्तर दिया था, 'विदेशी यात्री अपने देश के मेहमान होते हैं। उनसे पसों की मांग कैसे की जा सकती है?'

गुस्से में अकारण चाबुक घुमाता वह ऊपर की सीट पर जा बैठा। फनी पास बैठा हैट को थोड़ा तिरछाकर। आंखों को परेशान करती धूप कट गयी।

झटके से चालू हुई विक्टोरिया अपोलो बन्दर की दिशा में आगे बढ़ी।

बीच-बीच में गरदन घुमा घोड़ा ऐसे हिनहिनाता था, जैसे बेचैनी महसूस करता हो।

"साला बिदकता है।" उसमान ने हाथ ऊंचाकर पैर में चाबुक फटकारा, "नया है न ! हिच्-हिच्, हा-आ ! कल कसाई गली में ऐसा तूफान मचाया कि सारा मुहल्ला जमा हो गया। मैंने भी खूब खबर ली साले की। चमड़ी खींच ली···हा-आ-आ ! हिच्-हिच्। अभी समझता है। बाजू ऊ···ऊ···ऊ··· ऊ···ऊ···।"

म्यूजियम आते ही किचूड़-किचूड़ करते पहिये बायीं तरफ घूमे। फनी के विचार भी एक मोड़ पर आकर घूम गये। यहां से वह गेट-वे आफ इण्डिया देख सकता था। इसी इमारत के भीतर उसने प्यार की दुनिया में पहला कदम रखा था। वह कर्नाक बन्दर के पीछे की झोंपड़ी वाली शेफाली उसे यहीं मिली थी। दो पैसे के चने फांक रही थी। उसकी बिखरी जुल्फें, फटी साड़ी, टूटे बटन वाला ब्लाउज और गन्दे शरीर में से फैलती जवानी की दुर्गन्ध। सब कुछ अच्छा लगा था। उसके कोमल जबड़ों के नीचे चने नहीं पिस रहे थे, फनी का दिल टुकड़े-टुकड़े हो रहा था।···

यकायक मुक्त हंसी के परदे उठे और फनी ने चेहरा घुमाकर पीछे देखा। प्रौढ़ ने बायें हाथ से गीले होंठ पोंछते हुए शराब की बोतल जवान के हाथ में थमा दी। मुंह खोल उसने बोतल आधी की और दो-तीन घूंट गले के नीचे उतार गया।

विक्टोरिया रुक गयी। फनी नीचे कूद पड़ा। दोनों टूरिस्टों ने बाहर आ साश्चर्य गेट-वे आफ इण्डिया को ताका।

"सर!" फनी ने हाथ फैलाकर नाटकीय ढंग से शुरुआत की, "यह भव्य इमारत गेट-वे आफ इण्डिया के नाम से मशूहर है। आपकी इच्छा हो तो यहां से एक स्टीम-लांच में बैठ ऐलिफेण्टा की गुफा देखने जा सकते हैं। दायीं तरफ सालों पुराना आलीशान होटल ताजमहल है। बायीं तरफ···"

"मैन !" प्रौढ़ पुरुष ने ढीला पैण्ट ऊपर चढ़ाते हुए नीरस स्वर में कहा, "टुम हमको किडर ले आया ?"

"अपोलो बन्दर, सर !" और बात आगे बढ़ायी, "बायीं तरफ···"

"बकवास बण्ड करो।" जवान तड़का, "अम टुमको पहिले बोला, अमको ये सब डेकना नहीं मांगटा। अब कुछ नया डेकना मांगटा।"

"सारी, सर !" फनी ने दबी आवाज में कहा और दोनों को विक्टोरिया में चढ़ा फिर चला।

"हिच्-हिच-ही···आ-आ-आ। साले को आगे बढ़ते मौत आती है।" कहते हुए उसमान ने एक फटका घोड़े की गरदन पर मारा। चमड़ी कांप उठी। अगले पांव टखनों से मोड़ वह खड़ा हो गया। फनी ने सीट मजबूती से पकड़ रखी थी।

चाबुक के साथ उसमान का हाथ

फिर ऊंचा उठा। घोड़ा समझ गया और वह पूरी रफ्तार से दौड़ गया।

"अब कहां जायेंगे ?" लगाम पर काबू रखते उसने पूछा।

"चौपाटी।"

फनी का बीमार स्वर उठा। वह नहीं बोल रहा था। दूर से कोई बोलने का प्रयत्न कर रहा था।

'फ···नी !'

ओवल मैदान के अन्दर जाते ही उसके पांव रुक गये। घास की हरी चादर पर शेफाली स्मिति फैला रही थी।

'आज बहुत जल्दी आ गयी ?' उसने पास बैठते हुए पूछा।

'मैं जानती थी।'

'क्या ?'

'तू भी समय से पहले ही आयेगा।'

सन्ध्या के मिटते उजाले में उसे शेफाली की काली जुल्फें चारों तरफ फैली दीखीं। आंखों में देखा। देखता ही रहा। शेफाली उसके कान में फूंक-सी मार रही थी, 'फनी ! तू मुझे प्यारा लगता है।' उसका हाथ अपने हाथ में लेकर खेल रही थी, 'यह मौसम मुझे प्यारा लगता है।' सिर, पलकें, गालों पर वह होंठ दबा रही थी, 'जिन्दगी मुझे अच्छी लगती है।' उसके दिल पर एक मुलायम पंख का भार दे वह पड़ी थी। निःशब्द। निकट। शरीर के एक-एक अंग में। आत्मा की गहराई में। शेफाली कहां नहीं थी ? और फिर भी वह कहीं भी नहीं थी। विचित्र थी ! अति विचित्र ! नहीं थी। थी।···

चर्च-गेट के सामने थोड़ा अल्हड़ की तरह रुक गया। नीचे उतर उसमान ने प्यार से गरदन थपथपायी। पेट की चमड़ी पर चाबुक फटकारा। दो प्यारी गालियों का पुनरावर्तन किया। घोड़ा अटल खड़ा था। अन्त में उसमान उसे आगे की तरफ खींचने लगा। वह उसमान को पीछे की तरफ।

जवान ने एक घूंट भर, बोतल में डाट लगा दी और सीट पर खड़ा हो गया।

"क्या हुआ ?" प्रौढ़ ने बैठे-बैठे ही पूछा।

"घोड़ा बडमाश है। आगे बढ़ना नहीं मांगटा।"

"चाबुक मारो।"

"टुम मारेगा, मैन ?" कहते हुए जवान ने उसके चेहरे पर दृष्टि फेंकी।

प्रौढ़ ने उसके हाथ से बोतल ले मुंह में उलटी की। दूसरे दो घूंट गले के नीचे उतार उसमान के निकट आया। फनी ऊपर बैठा-बैठा देख रहा था। प्रौढ़ ने उसमान के हाथ से चाबुक छीन उलटी लकड़ी के तीन फटके घोड़े के कान तथा माथे पर मारे। एक हिनहिनाहट हुई, क्रन्दन-जैसी। उसमान थूक के साथ गुस्से को गले के नीचे उतार गया। घोड़े ने झटके से गरदन चारों तरफ घुमायी और जोर पकड़ा। दोनों व्यक्ति विक्टोरिया के साथ दौड़कर ऊपर चढ़ गये।

फनी उदास बैठा था। आगे बढ़ती विक्टोरिया के साथ उसका शरीर झटके अनुभव कर रहा था। मेरीन-ड्राइव का



समुद्र समीप था। उछलती लहरों का शोर उसके कानों से टकराया। उन समुद्री गीतों में रुदन था। व्यथा थी। कारण ?

···एक साधू शेफाली को महाराष्ट्र के किसी गांव से उठा लाया था। अपहरण-कर लाया था। वह भी बाल्यावस्था में। उम्र के सिर्फ दसवें वर्ष में।

सोने के अण्डे देने वाली मुरगी की तरह झोंपड़ी में उसे पाल रखा था। जवानी की प्रतीक्षा थी। शेफाली की जवानी 'बेयरर् चेक' थी। आसानी से वह कैश करवा सकता था।···

"हिच्-हिच्···हा-आ-आ-आ।"

···जवानी तो कब से चढ़ी बैठी थी।

'अब ?' शेफाली ने एक दिन पूछ लिया।

'अब क्या ?' फनी के विचार पानी की सतह के नीचे भटकने लगे, तड़पने लगे।

'थोड़े-से रुपये लाकर तू साधू को नहीं दे सकता ?'

थोड़े यानी दो हजार। कहां से लाऊं ? कैसे लाऊं ? किसी टूरिस्ट को लूट लाऊं ? डाका डालूं ? ऐसी अनेक कल्पनाएं उसके मानस पट पर चमक गयीं। असम्भव। असह्य। किसी का खून कर दूं ? किसी का गला दबा दूं ? जिसे कमाना हो उसके लिए बम्बई में अनेक मार्ग हैं। नहीं ! नहीं ! एक हलकी-सी चीख उसके गले से निकल गयी, यह मुझसे नहीं होगा।'

'तो ?' फिर प्रश्न उठा।···

"हिच्-हिच्-हा-आ-आ-आ-आ···"

'कुछ समझ में नहीं आता।'

'वक्त बड़ा नाजुक है।'

'साधू से मिल उसे फिर एक बार समझा देखूंगा।'

'बेकार।'

'एक बार कोशिश कर देखने में क्या हर्ज है?'

'हे भगवान!'

शेफाली उसके गले से लिपट गयी। गरम-गरम उच्छ्वास फनी की गर्दन पर···

"ए ईडियट।" प्रौढ़ ऊंचे स्वर से बोल रहा था, "अमको डरिया डेकना नहीं मांगटा। साला जानवर है क्या? अमारा बाट नहीं समझटा? अम साफ-साफ बोलटा, अमको पिंजरा डेकना मांगटा पिं···ज···रा। टूम समझा मैन?"

फनी समझ गया। उसकी आंखों के सामने तिमिर रेखाएं नाचने लगीं।

"कहां जायेंगे?"

"चिड़ियाघर।" एक सपाट उत्तर।

उसमान ने दो-तीन हलके झटके मार लगाम ढीली छोड़ दी।

मेरीन-ड्राइव की निर्जन सड़क पर घोड़े की टाप साफ सुनायी पड़ती थी। वातावरण उष्ण था। तारकोल की सड़क गरम भाप बाहर फेंक रही थी। फनी को आभास हुआ, कोई उसके नग्न शरीर को भट्ठी पर रखकर उबाल रहा था। वह उफ् भी नहीं करता। सहन करने की आदत पड़ गयी थी।

खिलखिलाते हास्य के परदे बीच ही में टूट गये। पीछे मुड़कर देखने की आवश्यकता नहीं थी। वह जानता था। वह उसका निकट का भूतकाल था। वह साधू और शेफाली···

"हिच्-हिच्---हा-आ-आ-आ।"

···जाने कितनी विनती की थी उस साधू से, पर वह अपनी बात पर अड़ा था

'दो हजार रोकड़ा।'

'दो हजार पूरे।'

फनी ने उत्तेजित हो उसकी गरदन पकड़ ली साधू का भरपूर हाथ उसके होंठ को काटता, खून की धार बहाता घूम गया। वह असहाय-सा गिर पड़ा। खड़े होने की कोशिश करते-करते साधू ने फिर सिर पर चिमटे से वार किया। फनी के एक पैर को अपने पांव तले दबा दूसरे को पूरी ताकत से खींच दिया. एक भयंकर चीख। दोनों हाथों में मुंह छुपाती, चीख मारती शेफाली झोंपड़ी के बाहर दौड़ गयी। फिर कोई फनी के अचेतन शरीर को कूड़ा गाड़ी के पास फेंक आया था—मृत चूहे की तरह।···

चिड़ियाघर के दरवाजे में विक्टोरिया घुसी। दोनों टूरिस्ट खड़े हो गये। उनके चेहरे पर जिज्ञासा, उत्सुकता थी।

फनी हैट को हाथ में ले नीचे कूद पड़ा। टूरिस्ट उससे आ सटे। पहला पिंजरा दिखायी दिया। कबूतर पंख फड़फड़ा रहे थे। दूसरे में गोश्त खाकर पंजा चाटती शेरनी पेड़ के नीचे शरीर को लम्बा किये लेटी थी।

"यू सन आफ ए बिच!" प्रौढ़

चिल्लाया। फनी विचलित हो उठा। "ये पिंजरा बच्चा लोग के लिए है। अम बड़ा लोग का पिंजरा डेकना मांगटा।"

"न···न···नहीं।" फनी ने रुंधे स्वर में कहा "मैं नहीं आ सकता··· मैं···मैं···नहीं।"

"टुमारा बाप बी आयेगा।" जवान ने उसका कालर पकड़ लिया। खींचा। प्रौढ़ ने पीछे से लात मारी। धक्का···

फनी आगे बढ़ने को राजी न था।

उसमान से सहन न हुआ। उसकी भौंहें तन गयीं, चेहरा सख्त हो गया। वह विक्टोरिया से कूद पड़ा। फनी के पास आते ही जवान ने उसके हाथ से चाबुक छीन दो टुकड़ेकर फेंक दिया।

"अम टूमारे साथ एक डिन का सोडा किया है।"

गहरी सांस भरता उसमान उसके कद्दावर शरीर को देखता रहा।

"यू टोंगा वाला। टुम बीच में गड़बड़ करेगा टो गोली मार डेगा।"

फनी को घसीटकर दोनों टूरिस्ट फिर विक्टोरिया में चढ़ गये। दुविधा में पड़े उसमान ने लगाम खींची।

"टुम शराब पीना मांगटा?" सीट पर टेढ़ी पड़ी बोतल उठा प्रौढ़ ने फनी के सामने रख दी। अन्तिम 'पेग' शेष था। वह क्षण भर अवाक् देखता रहा



फिर झपाटे से बोतल होंठों के बीच उलट दी।

गट-गट-गट।

'वाऊ-वाऊ…" जवान ने प्रौढ़ पुरुष को सम्बोधित करते हुए साश्चर्य कहा। "टुमने डेका मैन ? ये गाइड अमारे-जैसा सुव्वर है।" और चेहरा घुमाकर फनी की आंखों में देखा।

"कम आन, मैन! अमारे गले लगो। तुम ग्रेट आडमी बनना सकटा।" सहज रुक-कर, "मैन, टुम इण्डुस्टानी आडमी शराब पीकर रोटा क्यों है ? अमको डेको। अम हसटा है।" वह हंसा। "जोर-जोर से हसटा है।" और फिर हंसा। दुगुने जोर से। प्रौढ़ भी उसमें शरीक हो गया।

"हंसो, मैन, हंसो। जिण्डगी बौट कम है।"

दोनों ने फनी की कमर में अंगुली घुसा गदगुदी की। प्रयत्नपूर्वक हंसाने का एक प्रयास। फिर भी उसका चेहरा गम्भीर देख जवान तड़क उठा।

"मैन, टुम औरट का बच्चा है।"

विक्टोरिया रुकते ही दोनों की आंखें ऊंची हुईं। मुंह खुल गये। वे थोड़ी देर सिर्फ ताकते ही रहे।

घोड़ा हांफ रहा था। मुंह पर जम गयी झाग होंठों से टपकती लार के साथ नीचे गिर रही थी।

"मैन!" जवान ने प्रौढ़ पुरुष का हाथ अपने हाथ में ले दबाते हुए कहा, "ये साला इण्डुस्टानी रण्डी लोग बी कमाल का कूबसूरट है। टुम अण्डर जाना नहीं मांगटा क्या ?"

एक के बाद एक दोनों विक्टोरिया से नीचे कूद पड़े।

फनी उसकी पीठ को ओझल होते देखता रहा। उसकी लाल आंखों के सामने पिंजरे के द्वार खुले और हजारों में से एक शेफाली दोनों के शरीर के साथ भिंचती परदे के पीछे लोप हो गयी। ●

भुलक्कड़ डाक्टर की पत्नी का पहला पति : एक संयोग

एक डाक्टर बहुत कोशिश करता था कि अपने दिमाग को काबू में रखे पर उसे सफलता नहीं मिलती थी। वह अक्सर लोगों के फोन नम्बर और पते अपनी डायरी में नोट करता था लेकिन फिर भूल जाता था कि किसका कौन फोन नम्बर है, किसका कौन पता है और किसे उससे क्या काम है, या उससे किसका क्या सम्बन्ध है।

एक दिन वह अपनी डायरी के पन्ने पलट रहा था। उसे लाल स्याही में लिखा एक पता मिला। उसने सोचा, यह कोई महत्त्वपूर्ण व्यक्ति होगा। उसे लिख भेजा : "आप कौन हैं और आपसे मेरा क्या सम्बन्ध है ?"

एक सप्ताह बाद उत्तर आया : "आपके इसी आशय के एक अन्य पत्र का कल ही उत्तर दे चुका हूं। मैं आपकी पत्नी का पहला पति हूं।"

राह का पत्थर

प्रकाशचन्द्र श्रीवास्तव

भीड़ से हटकर जंगीसिंह एक ऊंचे टीले पर खड़ा हो गया था। खाकी जीन की ब्रीचेज और उसी रंग की फौजियों-जैसी चुस्त कमीज में उसका गठा बदन और उभरा जा रहा था। कमर में कारतूसों की चौड़ी पेटी कसी हुई थी और कन्धे से लटकती नंगी दुनाली बन्दूक सिर के ऊपर आसमान की ओर तनी थी। कभी दोनों हाथ कमर पर टिकाकर वह तन जाता, कभी शरीर का पूरा बोझ एक टांग पर अड़ाकर झुक जाता, कभी बिच्छू के डंक-जैसी तनी अपनी मूंछों को ऐंठने लगता और कभी हाथ सिर के ऊपर उठाकर बन्दूक की नली छूते-छूते हाथ नीचे कर लेता। तपती धूप में खड़ा-खड़ा बड़ी बेसब्री से बाज की तरह गरदन उचका-उचकाकर वह अपनी गोल-गोल पीली आंखें लगातार नचाये जा रहा था। नीचे दूर-दूर तक मुण्ड ही मुण्ड दिखायी पड़ रहे थे। सामने से गुजरती हुई भीड़ का रेलमपेल मेले की ओर बढ़ता जा रहा था। गर्द-गुबार में धुंधलाये हर चेहरे पर उसकी नजर फिसलती जा रही थी—बस, मुण्ड···मुण्ड···धक्कमधुक्की······शोर-शराबा···पहाड़ियों के पार के गांवों से झुण्ड के झुण्ड लोग उमड़े चले आ रहे थे और सभी भेड़ियाधसान की तरह मेले में धंसते जा रहे थे। 'बोल काली मैया की···जय!' मन्दिर की ओर बढ़ते लोग रह-रहकर चिल्ला पड़ते। जंगी ने जेब से एक सिगरेट निकालकर सुलगा ली। जोर का एक कश खींचकर उसने धुएं का बादल उड़ा दिया।

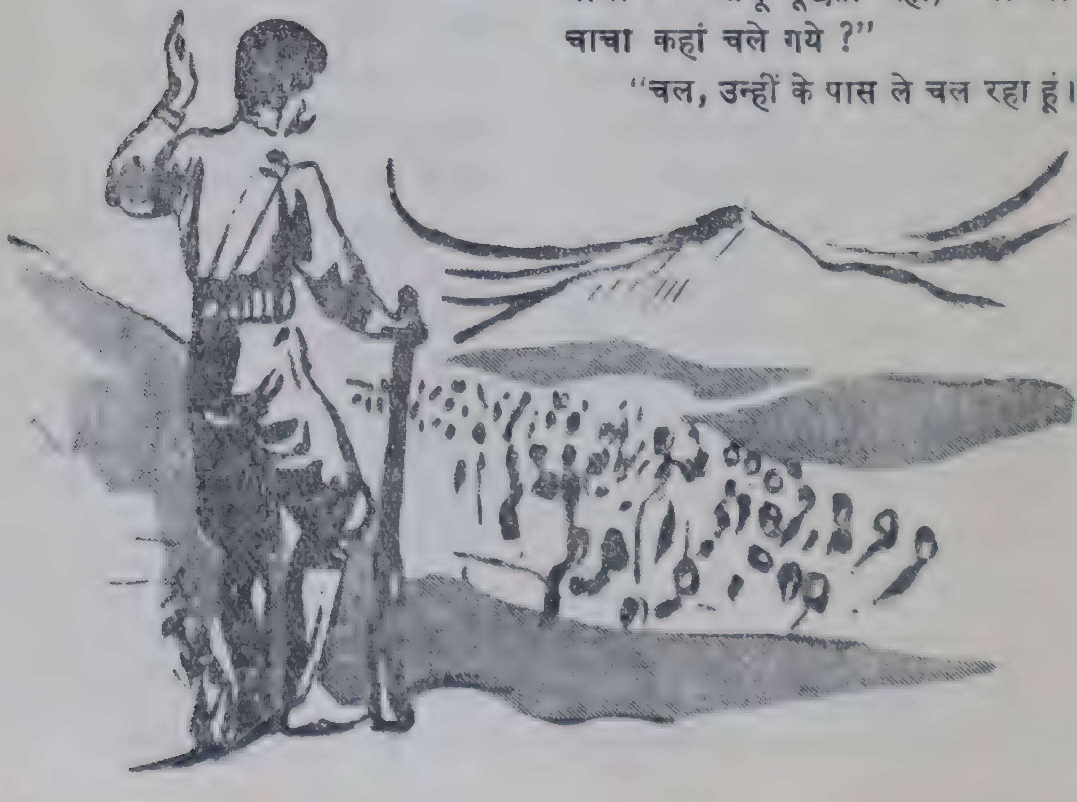
पसीने से लथपथ जंगीसिंह बड़ी देर से वहीं खड़ा-खड़ा लगातार घूरे जा रहा था कि उसकी आंखें दूर से आते निहालसिंह पर जा टिकीं। अपने आधे के हिस्सेदार नन्हे राजू को कन्धे पर बिठाये वह चला आ रहा था। बगल में सफेद धोती पहने उसकी विधवा भाभी थी—राजू की मां। निहालसिंह ने भी अब तक जंगी को देख लिया था और उस पर नजर पड़ते ही अपना एक हाथ राजू के सिर के ऊपर उठाकर उसने जंगी का ध्यान अपनी ओर खींचा। जवाब में जंगीसिंह ने भी अपना एक हाथ हौले-से ऊपर उठाकर झट गिरा लिया। सिगरेट आहिस्ता-से नीचे गिराकर उसने बूट-तले कुचल दी और एक ओर कन्धे से लटकती बन्दूक की बेल्ट सिर में डालकर गरदन के सहारे अटका ली। अब सीधी बन्दूक आड़ी होकर पीठ पर जम गयी थी।

एक हाथ कारतूस की पेटी पर रखकर वह ढलान पर उतरने लगा, तो उसका दूसरा हाथ अनायास ही ब्रीचेज की जेब में चला गया जिसमें कुछ टाफियां और चाकलेट खरीदकर उसने पहले ही रख लिये थे। नीचे आकर वह भीड़ में एक ओर दुबककर खड़ा हो गया।

थोड़ी देर बाद ही भीड़ की रेलमपेल से बचता-बचाता निहालसिंह सामने आ गया। राजू को कन्धे से उतारकर उसने नीचे खड़ा कर दिया। उसका एक हाथ पकड़कर सामने से गुजरते समय उसने आंखों-आंखों में जंगीसिंह को कुछ इशारा किया। जंगीसिंह ने मुस्कराकर अपने सिर को एक झटका दिया और अपनी कड़ियल मूंछों पर ताव देकर उससे दो-तीन कदम पीछे-पीछे चलने लगा। पीछे की भीड़ ठेलती हुई आयी और उन्हें बहुत आगे ढकेल ले गयी।

आगे बढ़ने पर मन्दिर के पास भीड़ का रेलमपेल और अधिक बढ़ गया। मौका पाकर जंगीसिंह आस-पास के लोगों को धकियाता हुआ आगे बढ़ा और निहालसिंह के पास पहुंच गया। निहालसिंह ने राजू का हाथ उसे पकड़ाया, तो खुशी से वह चहक उठा, "जंगी मा···!" जंगी ने झट उसके मुंह पर अपना हाथ रख दिया और निहालसिंह भीड़ से अपनी भाभी को बचाते हुए आगे बढ़ गया। जंगी ने राजू को उठाकर अपनी गोद में ले लिया और मुड़कर तेज कदमों से उलटी ओर चल पड़ा। "कहां जा लहे हो, जंगी मामा?" राजू पूछता रहा, "मां और चाचा कहां चले गये?"

"चल, उन्हीं के पास ले चल रहा हूं।"



जंगी ने धीरे से कहा। जेब से उसने एक चाकलेट निकालकर उसे पकड़ा दी और पीठ पर लटकती बन्दूक के कुन्दे पर हाथ फेरता हुआ आगे बढ़ चला।

लोगों की नजरों से अपनी नजर बचाता हुआ जंगीसिंह लम्बे-लम्बे डग भरता हुआ भागा आ रहा था। रह-रहकर वह मुड़कर देख लेता था, मानो कोई उसका पीछा कर रहा हो। कुछ आगे बढ़कर उसने सड़क छोड़ दी और जंगल की ओर जाने वाली पगडण्डी पकड़ ली।

चलते-चलते मेले के हंगामे से वह काफी दूर निकल आया। मुड़कर उसने देखा, पीछे सिर्फ झाड़ियां और पेड़-पौधे ही नजर आये। थोड़ी देर खड़ा-खड़ा वह देखता रहा, कोई उसका पीछा करता हुआ दबे पांव चला तो नहीं आ रहा है! किसी तरह की आहट नहीं मिली, तो उसने जैसे कुछ चैन की सांस ली। राजू को गोद से उठाकर उसने कन्धे पर चढ़ा लिया और आगे बढ़ने लगा।

सब कुछ पूर्व निर्धारित योजनानुसार ही हुआ था। बहुत सोच-विचारकर यही तय हुआ था कि राजू और उसकी मां को लेकर निहालसिंह मेले में जायेगा; जंगीसिंह धीरे से राजू को खिसका ले जायेगा और उसका काम तमाम कर देगा। शोर मचेगा कि राजू मेले में खो गया और असलियत की किसी को कानों-कान खबर तक न हो सकेगी।

जंगीसिंह काफी दूर निकल आया था। कुछ ही दूर आगे बढ़ने पर जंगल शुरू हो गया। वीरान पगडण्डी उसमें खोती चली गयी थी, फिर भी जंगी को सब्र नहीं हुआ, तो पगडण्डी उसने छोड़ दी और जंगली-कंटीली झाड़ियों में उलझता-बचता वह पहाड़ी पर चढ़ने लगा। कन्धे पर राजू का बोझ और लगभग सीधी चढ़ाई। झाड़ियों की जड़ों को पकड़ता-थामता बड़ी मुश्किल से वह एक-एक कदम ऊपर चढ़ रहा था। "तुम्हाला घोला कहां है जंगी मामा?" राजू ने पूछा।

"घर पर है। चल तुझे घोड़े पर चढ़ाऊंगा।" जंगीसिंह मुसकराया।

बहुत परेशान था निहालसिंह कि अपनी राह का पत्थर हटाये कैसे। बहुत सिर खपाने पर भी उसे कोई उपाय नहीं सूझ रहा था। अन्त में, उसने अपने जिगरी दोस्त और रिश्ते में अपने खास साले जंगीसिंह के सामने अपनी परेशानी जाहिर कर दी। जंगीसिंह मिनट भर सोचता रहा, फिर हंस पड़ा था, 'बस, इत्ती-सी बात के लिए फिकर करते हो? बहुत सीधा-सा उपाय है।'

उसकी बातें सुनकर निहालसिंह को बड़ा अचरज हुआ कि जिस समस्या के चलते उसकी आंखों की नींद हराम हो रही थी, उसी का आखिर इतना सीधा-सा क्या समाधान है! जंगी ने उसके कान में सीधा-सा समाधान बता दिया था, 'राजू को खत्म कर दिया जाय।' और आज शिकार जंगी के पंजे में था।

ऊपर पहुंचते-पहुंचते वह बुरी तरह हांफ रहा था। कुछ-कुछ घबराहट, तेज धूप और सीधी चढ़ाई ने उसे बिलकुल थका दिया और पसीने से वह तर-बतर हुआ जा रहा था। एक पेड़ की छाया में पहुंच-कर उसने जानवरों की-सी चौकन्नी नजर से चारों ओर देखा, फिर राजू को एक हाथ से पकड़कर कन्धे से नीचे उतार दिया। पीठ पर जमी बन्दूक भी उतारकर उसने नीचे रख दी और वहीं घास पर बैठकर दम लेने लगा।

"मामा, पानी।" राजू ने कहा।

जंगीसिंह सामने खड़ी दूसरी पहाड़ी की ओर देख रहा था, कोई दो-ढाई ताड़ ऊपर और चढ़ना था। फिर नीचे उतरने पर नदी की तलहटी मिलेगी, जहां पानी मिलेगा। प्यास से उसका भी गला सूखा जा रहा था। उसने जेब से दो-तीन चाकलेट-टाफी निकालकर उसकी ओर बढ़ा दिया, "ले, मिठाई खा। उस ओर चलने पर पानी मिलेगा।" एक चाकलेट उसने अपने मुंह में डाल लिया।

सूरज माथे से कई हाथ नीचे सरक-कर चमक रहा था। जंगीसिंह उठ खड़ा हुआ। उसने एक बार फिर चारों ओर चौकन्नी नजर डाली, झुककर बन्दूक उठाकर एक कन्धे पर डाल ली और राजू को दोनों हाथों से ऊपर उठाकर दूसरे कन्धे पर बैठा लिया। तेज कदमों से वह पहाड़ी की ओर लपका और ऊपर चढ़ने लगा। झाड़ियां और घनी हो गयी थीं और चढ़ाई भी पहले से अधिक सीधी थी। मजबूत झाड़ियों को पकड़कर जहां-तहां निकले पत्थरों पर पैर रखता हुआ वह ऊपर चढ़ता गया। गिरने के डर से राजू अपनी दोनों बांहें उसके गले में डाले जोर से उसे पकड़े था और जाने क्यों राजू की यह भयभीत-सी पकड़ जंगीसिंह को और सावधान किये हुए थी। बहुत सम्हल-सम्हलकर वह एक-एक कदम ऊपर चढ़ रहा था। कंटीली झाड़ियों के बीच से रास्ता निकालकर ऊपर तक पहुंचने में उसे काफी समय लग गया।

ऊपर पहुंचकर एक ओर निकले पत्थर के एक छोटे-से टुकड़े पर अपने पांव टिकाकर उसने तेज नजरों से चारों ओर देखा, फिर छाया में बैठकर थोड़ी देर सुस्ता लेने के लिए वह आगे बढ़ा। अभी दो-तीन कदम ही वह आगे बढ़ा होगा कि पत्थर का वह टुकड़ा अर्राकर गिरा और लुढ़कने लगा। जंगली पक्षी का एक जोड़ा चिहुंककर पास की झाड़ी से चीखता हुआ दूर निकल गया। जंगीसिंह खड़ा-खड़ा भौचक-सा उस लुढ़कते पत्थर को देखता रहा। मारे डर के वह थरथरा गया। क्षणभर की भी देर हुई होती, तो नीचे राजू के साथ ही उसकी भी लाश पड़ी होती। उछलते-लुढ़कते पत्थर की घर-घराहट देर तक सुनसान जंगल में गूंजती रही। जंगीसिंह एक झाड़ी की ओट में दुबककर चारों ओर अपनी निगाह दौड़ाता रहा, कहीं किसी ने देख तो नहीं लिया!

जब वह पूरी तरह आश्वस्त हो गया

कि कहीं किसी की सुगबुगाहट नहीं मिल रही है, तो तेज कदमों से तुरन्त वह आगे बढ़ चला, पल भर छाया में बैठकर दम भी नहीं ले सका।

बेतहाशा भागते-भागते वह काफी दूर निकल आया था। पहाड़ी की दूसरी ओर आते ही नीचे नदी की तलहटी में चमचमाती जलधार दिखायी पड़ी। जंगीसिंह सम्हल-सम्हलकर एक-एक कदम रखता हुआ, झाड़ियों के सहारे नीचे उतरने लगा। कभी वह खड़ा होकर उतरता और कभी बैठकर झाड़ियों की शाखाएं पकड़कर धीरे-धीरे नीचे सरकता।

"तुम्हारा घल अभी कितनी दूल है, मामा ?" राजू ने पूछा।

जंगीसिंह व्यंग्य से मुसकराया, "अब ज्यादा दूर नहीं है, बेटे !"

उतरते ज्यादा देर नहीं लगी। जंगीसिंह ने राजू को कन्धे से उतारकर गोद में ले लिया और ब्रीचेज में लगे घास-पत्ते झाड़-झूड़कर नदी की तलहटी में उतर गया। मारे प्यास के उसका गला सूखता जा रहा था। रेत पर लम्बे-लम्बे डग बढ़ाते हुए वह पानी के पास पहुंचा। राजू को कन्धे से उतारकर उसने नीचे खड़ा कर दिया और बन्दूक उतारकर एक पत्थर के सहारे धीरे से टिका दी। पैण्ट की जेब से मुरादाबादी फोल्डिंग गिलास निकालकर उसने तान दिया और पानी भरकर पहले राजू को पिलाया। जब वह पी चुका, तो जंगीसिंह ने उसे एक ओर खड़ाकर दिया और अपना हाथ-मुंह धोकर लगा गिलास पर गिलास हलक में उड़ेलने। सड़ी गरमी और सख्त मसक्कत में इतनी करारी प्यास लगी थी उसे कि पानी से जैसे तृप्त ही नहीं हो रहा था। भरपेट पानी पी चुकने के बाद गिलास के मुंह पर जब उसने अपनी तलहथी मारी, तो एक हलकी-सी आवाज के साथ वह पूर्ववत् मुड़कर पेंदे के पास सिमट गयी। उसने उसे पैण्ट की जेब में डाल लिया और रूमाल खींचकर हाथ-मुंह पोंछने लगा। ज्यादा देर तक जंगीसिंह उस खुले में नहीं रुक सका। ऊपर की जेब से एक सिगरेट निकालकर उसने सुलगा ली और होंठों में दबा लिया। बन्दूक उठाकर उसने कन्धे से लटका ली और झटपट राजू को गोद में उठाकर नदी में बिखरे पत्थरों पर उछलता, छलांगें लगाता दूसरी ओर आ गया।

सामने ऊंची पहाड़ी खड़ी थी। नदी की रेत खत्म होते ही झाड़ियां शुरू हो गयी थीं। जंगीसिंह ने एक पेड़ की छाया में पड़ी बड़ी-सी चट्टान पर लाकर राजू को खड़ा कर दिया और खुद भी वहीं बैठ गया। सिगरेट के दो-तीन कश खींचकर उसने पत्थर पर रगड़कर झटके-से एक ओर फेंक दिया और कन्धे में अटकी नंगी बन्दूक उतारकर एक हलके झटके के साथ उसे बीच से मोड़ दिया। अन्दर पड़ी दो कारतूसों की पीली पेंदियां धूप में झकझका गयीं। खटाक की आवाज के साथ उसने फिर बन्दूक की नली सीधी कर दी और उसकी आंखें अनायास ही राजू की ओर उठ गयीं।



पचास बीघे उपजाऊ जमीन का अकेला हकदार राजू। फसल कटने पर खलिहान में यहां से वहां तक छोटी-मोटी पहाड़ी उठ खड़ी होती। साल में हजारों मन गल्ला उपजता था। बिलकुल मुफ्त में दो हजार रुपये बीघे के हिसाब से मिट्टी के मोल बेच देने पर भी एक लाख रुपये की जायदाद थी और यह जायदाद निहालसिंह की आंखों में चढ़ गयी थी। विधवा भाभी को अपने में मिला-जुलाकर उसने रखा था। वैसे आज राजू नाबालिग है, लेकिन कल जब वह सयाना हो जायेगा, तो कौन जाने, भाई-बिरादर उसे मिल-जुलकर रहने देंगे या नहीं ! सोना उगलने वाली पचास बीघे जमीन का वह अकेला हकदार था, कल बालिग होते ही वह अपना हिस्सा लेकर अलग हो जायेगा, तब? अपने हाथ में आयी जायदाद निहालसिंह किसी भी कीमत पर छोड़ना नहीं चाहता था। राजू उसकी आंख की किरकिरी बन गया था। इस किरकिरी को निकाल फेंकने का उसने दृढ़ संकल्प कर लिया था। 'बन्दूक की एक गोली सारी परेशानी दूर कर देगी।' जंगीसिंह ने उसे बताया था।…

राजू एकटक बन्दूक को देख रहा था। मामा को अपनी ओर देखते हुए उसने देखा, तो अपना एक हाथ बढ़ाकर उसने

बन्दूक की नली पर रख दी। जंगीसिंह के होंठों पर एक शैतानी हंसी खेल गयी। एक बार उसके जी में आया, क्यों न इसे यहीं खत्मकर सामने बहती नदी में बिखरे किसी पत्थर के नीचे दबा दूं! उसकी अंगुलियां बन्दूक की बोल्ट से जा लगीं। लेकिन दोनों ओर खड़ी पहाड़ियों के बीच उफनती जलधार की खुली वादी में उसकी नजर गयी, तो उसके हाथ जहां के तहां रुक गये। दोनों ओर दूर-दूर तक बिलकुल साफ दिखायी दे रहा था। कोई भी लकड़हारा या चारा काटने वाला या शिकारी अगर इधर आ गया होगा, तो बन्दूक की धांय से चौंककर अपनी गरदन मोड़ते ही दूर से ही सब काण्ड देख लेगा। इस पहाड़ी की दूसरी ओर चला जाना ज्यादा सुरक्षित रहेगा।

जंगीसिंह और अधिक वहां बैठा नहीं रह सका। कन्धे पर बन्दूक लटकाते हुए वह उठ खड़ा हुआ और राजू को दूसरे कन्धे पर चढ़ाकर पहाड़ी के किनारे-किनारे नदी के साथ-साथ चलने लगा। नदी के साथ-साथ ही चलकर पहाड़ी की दूसरी ओर आराम से पहुंचा जा सकता है। रास्ता चक्करदार जरूर है, लेकिन सीधी चढ़ाई चढ़ने पर उसे काफी मसक्कत करनी पड़ेगी और वक्त भी बहुत लग जायेगा।··· लेकिन दस-बारह कदम आगे बढ़ते ही वह ठिठककर खड़ा हो गया। इस तरह खुले में चलना खतरे से खाली नहीं था। किसी पहाड़ी पर कोई भूला-भटका आ गया होगा, तो दूर से ही उसकी निगाह जंगीसिंह को पकड़ सकती है।

जंगीसिंह तेजी से मुड़ा और पहाड़ी पर चढ़ने लगा। झाड़ियों की ओट ले-लेकर उनके सहारे वह मजे से ऊपर चढ़ सकता है। घने जंगल में छिपता-दुबकता वह चला जायेगा, कहीं से कोई उसे देख नहीं सकेगा।

माथे पर तेज धूप, कन्धों पर बोझ और लगभग सीधी चढ़ाई। भागते-भागते जंगीसिंह काफी रास्ता तय कर चुका था और थककर चूर-चूर हुआ जा रहा था। हर दस कदम पर उसे कहीं न कहीं खड़े-खड़े या बैठकर सुस्ताना पड़ता था। चढ़ते-चढ़ते यों ही कहीं वह अगर अपने कन्धे झकझोर दे, तो राजू नीचे लुढ़ककर अनायास ही ठण्डा हो जायगा। लेकिन नहीं। जब मारना ही है बेचारे को, तो यों पटककर मारने से क्या फायदा? बन्दूक की एक गोली काफी होगी। अगर दुहरा दी गयी, तो बिना किसी तकलीफ के ठण्डा हो जायेगा।···वह ऊपर चढ़ता गया।

इस तरह चढ़ते-चढ़ते ऊपर तक आने में उसे डेढ़-दो घण्टे लग गये। सामने लगभग मील भर की ऊंची-नीची चढ़ाई थी। पहाड़ी का दूसरा किनारा जंगल के ठीक बीचोबीच पड़ता था, जहां काफी ऊंचाई से जलधार गिरने के कारण हर वक्त जोर की हरहराहट हुआ करती थी। बन्दूक छूटने की आवाज उस हरहराहट में डूब जायेगी। वहीं इस छोकरे को गोली मारकर किसी झाड़ी में फेंक दिया जाय, तो जंगली जानवर रात भर में

इसकी हड्डी-पसली सब चबा जायेंगे। कोई नामो-निशान नहीं रह जायेगा।

कुछ दूर तक चलने के बाद थोड़ी-सी और ऊंचाई उसे चढ़नी पड़ी, फिर पहाड़ी क्रमशः ढलवां होती गयी थी। दूर-दूर तक ऊंचे-ऊंचे पेड़ खड़े थे और नीचे चारों ओर घनी झाड़ियां फैली थीं। तीसरे पहर की तिरछी धूप रह-रहकर पेड़ों की झुरमुटों से निकलकर सीधे मुंह पर चमक पड़ती थी। लेकिन अब कहीं सुस्ताने की फुर्सत उसे नहीं थी। जल्दी से जल्दी इसे ठिकाने लगाकर, दिल डूबने से पहले जंगीसिंह को जंगल छोड़कर निकल जाना था।··· चलते-चलते अचानक पास ही किसी झाड़ी में कुछ खरखराहट हुई। जंगीसिंह ठिठककर खड़ा हो गया और कन्धे की बन्दूक उतारकर झट सम्हाल ली। एक बड़ा-सा साम्भर कानों को खड़ा किये सामने ही खड़ा था। जंगीसिंह का मन ललचाकर रह गया। कोई और दिन होता तो, अपने-आप झोली में आया यह शिकार वह हाथ से निकलने नहीं दे सकता था। साम्भर खड़ा रहा, खड़ा रहा, फिर बिजुककर एक ओर भाग गया।

जंगीसिंह ने बन्दूक के दोनों बोल्ट चढ़ा लिये थे और हाथों में उसे सम्हालकर सावधानी से एक-एक कदम आगे बढ़ता गया। अचानक उसके मन में आया, कौन जाने कोई खुफिया ही साम्भर का वेष धरकर उसके सामने आ खड़ा हुआ हो। साम्भर की बड़ी-बड़ी घूरती आंखें जंगीसिंह की नजरों के सामने नाच गयीं, मानो अभी तक घूर-घूरकर वह उसे कहीं से छिपकर देख रहा हो। उसकी चाल तेज हो गयी। लेकिन चलते-चलते ही वह अपनी नादानी पर हंस पड़ा, 'धत्! ऐसा नहीं हो सकता।'

"कौन चीज, मामा?" उसके माथे को जोर से पकड़े हुए राजू ने पूछा।

"चुप कर तू।" जंगीसिंह ने उसे घुड़क दिया।

चारों ओर चौकन्नी नजर डालते हुए वह आगे बढ़ने लगा। जरा भी आहट होती, तो वह ठिठक जाता, कहीं कोई जंगली जानवर अचानक हमला न बोल दे। पिछले महीने इसी इलाके में हांका पड़ा था, तो जंगीसिंह ने एक आदमखोर बाघ को मार गिराया था। पूरा इलाका छह-सात महीने तक उसके मारे परेशान रहा। अब भी डर के मारे कोई इधर आने का नाम नहीं लेता।

ढलान पर उतरते ज्यादा देर नहीं लगी। ज्यों-ज्यों दूसरा छोर नजदीक आता गया, पहाड़ी पर से गिरती नदी की हरहराहट तेज होती गयी। किनारे पहुंचकर जंगीसिंह ने चारों ओर गौर से देखा, फिर एक ओर एक खन्दक के पास आकर खड़ा हो गया जहां चारों ओर घनी झाड़ियां थीं। राजू को कन्धे से उतारकर उसने नीचे खड़ा कर दिया। यही जगह ठीक होगी। गोली लगते ही यह अपने-आप खन्दक में लुढ़क जायेगा। झटपट काम खत्म करके निकल चलना है। समय बिलकुल नहीं रह गया है। "मामा पानी,"

राजू ने जो मचलती जलधार देखी, तो उसे प्यास लग गयी।

जंगीसिंह एकटक राजू को देख रहा था। उसकी बात सुनकर वह दांत पीसते हुए मुसकराया। 'बच्चू मौत के दरवाजे पर खड़े हैं और इन्हें प्यास लग गयी! खैर, पानी पिला देना ही ठीक होगा। सुना है, जेल में जिसे फांसी दी जाती है, उसकी भी आखिरी ख्वाहिश पूरी की जाती है।' "यहीं खड़ा रह, मैं पानी लेकर आता हूं," कहकर जंगीसिंह एक हाथ में बन्दूक थामे मुड़ा और तिरछी ढलान तेजी से उतरने लगा।



नदी किनारे पहुंचकर उसने खुद भी पानी पिया और गिलास भरकर जल्दी-जल्दी ऊपर चढ़ने लगा। तभी अचानक एक ओर की झाड़ियों में कुछ खरखराहट हुई और दूसरे ही क्षण राजू चीख उठा, "मामा!" एक बड़ा-सा लकड़बग्घा राजू की ओर बढ़ता चला आ रहा था। जंगीसिंह के हाथ से गिलास छूट गया और दूसरे ही क्षण नदी, पहाड़ और जंगल धांय की आवाज में डूब गये। साथ ही साथ मृत्यु-यन्त्रणा की गर्जना के साथ लकड़बग्घा ऊपर उछला और गिरकर ढलान पर लुढ़कने लगा। उसका मस्तक लहुलुहान हो गया था। जंगीसिंह ने बन्दूक का दूसरा घोड़ा भी दबा दिया। लुढ़कता हुआ लकड़बग्घा एक झाड़ी के पास आकर ठण्डा हो गया।

उसने दूसरी ओर गरदन घुमायी तो देखा, राजू भी दहशत के मारे नीचे लुढ़कता आ रहा है। जंगीसिंह बिजली की-सी तेजी में लपका और दूसरे ही क्षण राजू उसके सीने से लगा था। जंगीसिंह ने अपनी दोनों बांहों में उसे भर लिया था। ●

वेडिंग गाउन

सतीश बतरा

कहते हैं, सिर्फ प्यासा ही पानी का मूल्य बता सकता है, लेकिन सप्ताहों, महीनों पानी में रहने के बाद हम नाविकों को पुनः भूमि पर आने का मूल्य अपेक्षाकृत अधिक मालूम है। दिनों तक दूर-दूर तक फैले हरे नीलाभ जल को देख-देखकर जी ऊबने लगता है। हिलते जहाज की हरकत हमारे मस्तिष्क को थका देती है, और फिर किसी प्रकाश-स्तम्भ की घूमती बीकन-लाइट भूमि के समीप होने का पता देती है। सफेद-सफेद मुरगाबियां तथा जलपक्षी समुद्र के तट के निकट उड़ते, तैरते और चुहल करते नजर आने लगते हैं, तो हम में से हर कोई चैन की सांस लेता है। सीने में नयी आशाएं जन्म लेती हैं। एक नये जीवन के द्वार पर खड़े नये-नये प्रोग्राम बनते हैं और जीवन के गतिमान होने का मानो पहली बार विश्वास होता है।

जहाज की रेलिंग पर खड़े वरगीज ने आखिरी कश लेकर कैरम की गोटी फेंकने के अन्दाज में सिगरेट को समुद्र में उछाल दिया।

"तुम देख लेना, ईला जरूर आयी होगी। लेकिन मैं इस बार ईला को मुंह नहीं लगाऊंगा ! बहुत बनती है ! उससे तो लिजी कहीं अच्छी है !"

"लिजी। ओह। तभी तुम, उल्लू की दुम, यात्रा में चा-चा की प्रैक्टिस करते रहे !" मैंने 'चा-चा' की मुद्रा में घुटनों को खम देकर, कमर मरोड़ते हुए कहा।

वरगीज एक ऊंचा कहकहा लगाकर हंस दिया। वह जीवन के हर क्षेत्र में विभिन्नताओं पर विश्वास करता है। उसका कहना था कि जीवन को खूंटी से बांध-कर मत रखो। इसी कारण वह नित्य नये साबुन, नयी टूथपेस्ट और नयी लड़की चुनता था।

"तुम तो रूढ़िवादी हो ! तुम्हारा तो सूजी के साथ जाये बिना कल्याण न होगा !"

"हां !" मैंने होंठों में मुस्करा दिया, "छह महीने बाद बम्बई पहुंच रहा हूं।"

"तुम कभी एक नाविक नहीं बन सकते।" उसने निर्णयात्मक ढंग से कहा, "तुम्हें चाहिये कि तुम पंजाब के किसी कच्चे झोंपड़े में किसी औरत के घुटनों से लगे बच्चों को लोरियां देते रहो।" और वह मुझे घृणापूर्वक देखते हुए बाइलररूम की सीढ़ियों की ओर बढ़ गया।

मैं उसकी इस मोहक अदा को देखकर मुस्कराता रहा और फिर मुंह फेरकर समुद्र को निहारने लगा जहां कुछ मील परे ताजमहल होटल, गेट-वे आफ इण्डिया और बेलार्ड एस्टेट की विशाल इमारतों की रूपरेखा उभर रही थी।

सूजी को मैं लगभग दो साल से जानता था। उससे पहली भेंट बम्बई में कुछ नाविक मित्रों के साथ गेट-वे के पास वाले एक रेस्त्रां में हुई थी। वह राक-एण्ड-राल कर रही थी और हर हरकत के साथ टेरीलीन के ब्लाउज में से उसका सौन्दर्य फूट-फूट पड़ रहा था। वह बातें बहुत अधिक करती थी लेकिन उसके चेहरे पर एक भोलापन था जो प्रायः इस प्रकार की लड़कियों से कोसों दूर रहता है। उसका चेहरा अधिक सुन्दर नहीं था, परन्तु मुझे उसका यही भोलापन भा गया था। वह हमारी शिपिंग कम्पनी ही में टाइपिस्ट थी और कोलाबा में एक छोटे-से फ्लैट में तीन लड़कियों के साथ रहती थी। मैं उन सब लड़कियों को जानता था। कैथी, मेरी, शीला। उनमें कोई सेल्ज-गर्ल थी और कोई किसी दफ्तर में रिसेप्शनिस्ट। लेकिन सब की सब जीवन का पूर्ण आनन्द प्राप्त करने को उत्सुक थीं। सूजी मुझे इन लड़कियों से दूर रखना चाहती थी। इसी लिए जब कभी उनमें से किन्हीं से राह चलते या किसी रेस्त्रां में भेंट हो जाती, तो वह जल्दी ही उनसे पीछा छुड़ाने का यत्न करती। शायद इसलिए कि वे लड़कियां टेढ़ी चितवन से देखने और नैनों के बाण फेंकने में सूजी



से अधिक निपुण थीं। मैं भी जान-बूझकर उनसे चहकने की कोशिश करता, तो सूर्जा मुझसे बिगड़ जाती।

'तुम तो जहां लड़की देखते हो, वहीं फिसल जाते हो!' वह मेरी ओर घूर-घूरकर अपनी बड़ी-बड़ी आंखों से देखती। उसकी आंखों में शिकायत होती और चेहरा गुस्से की लाली से दहकने लगता, तो मेरा जी चाहता कि मैं उसे अपनी बांहों में भींच लूं।

'और जब मैं चला जाता हूं, तो तुम...'

'मैं मजबूर हो जाती हूं। मजबूरी इस संसार का सबसे बड़ा अभिशाप है, गो-गो!' वह मुझे प्यार से गो-गो ही बुलाती थी। 'मेरे कई फ्रेण्ड्ज हैं, लेकिन मैं अपने मन की बात सिर्फ तुम से ही कह सकती हूं।' उसके स्वर में इतना स्नेह और अपनापन होता कि मुझे विश्वास हो जाता। यद्यपि यह भी बहुत सम्भव है कि वह यही बात इसी मुद्रा में अपने दूसरे दोस्तों से भी कहती हो, लेकिन न जाने क्यों मुझे विश्वास न होता था। मुझे ऐसा जान पड़ता था, जैसे उसके और मेरे बीच उसके अश्लील जीवन के उपरान्त भी एक आत्मिक बन्धन हो। मैं बम्बई पहुंचते ही उसकी ओर चुम्बक की भांति खिंच जाता था।

बम्बई आने पर हम सारा दिन इकट्ठे घूमते रहते, बांहें झुलाते, नन्हें बच्चों के समान कूदते-फांदते। कभी चर्च-गेट, कभी क्रेफोर्ड मार्केट, कभी नरीमान पाइण्ट, कभी फ्लोरा फाउण्टेन। उसे मालूम था कि हम समुद्र पर रहकर मामूली-मामूली चीजों के लिए भी तरस जाते थे। इसी लिए वह जान-बूझकर कभी गन्ने का रस पीने की जिद करती, कभी गरम-गरम भुट्टे खाने की। तन्दूरी-मुरगा और शामी कबाब के लिए उसने नयी-नयी दूकानें ढूंढ़ रखी थीं। शाम को मेरीन-ड्राइव के किनारे हम ठण्डी हवा का आनन्द लेते, चौपाटी तक निकल जाते और वहां भेलपुरी, चना-मुरमुरा और दही की चाट चटखारे ले-लेकर खाते। उसे मालूम था कि मुझे ये तमाम चीजें बेहद पसन्द हैं और बम्बई छोड़ने पर हो सकता है, महीनों तक न मिल सकें। कभी-कभार जहाज के दूसरे मित्र इसी तरह किसी लड़की की कमर में हाथ डाले सैर करते मिल जाते, तो मैं और वह एक-दूसरे को आंख मारते, गुजर जाते। इन तीन-चार दिनों की अवधि में हम दोनों एक रोज पिकनिक पर जरूर जाते। कभी जूहू कभी वरसोवा, जहां हम नारियल के झुण्डों में दूर कहीं जाकर अपना अड्डा जमाते। रेत पर बांहों में बांहें डालकर लेटे रहते और जब कभी रेत की तपिश हमारे जिस्मों को गरमा देती, तो हम समुद्र में डुबकी लगाने के लिए भाग जाते। मौजें एक-दूसरे से लड़ती-झगड़ती आतीं और सफेद दूधिया झाग फैलाती हमारे सिरों से गुजर जातीं। नहाने के बाद वह देर तक अपना भींगा सिर मेरे कन्धे या सीने पर रखकर लेटी रहती। इस थोड़े-से समय में जीवन का

आनन्द आ जाता। इसके बाद जीवन जीने योग्य था या नहीं, मैं बिलकुल भूल जाता।

सूजी और शायद मुझे इस बात से कोई सम्बन्ध नहीं था कि इस थोड़े-से समय के बाद हमारी राहें फिर अलग-अलग हो जायेंगी। मुझे याद है कि मैं एक बार हर नाविक के स्वभावानुसार अपनी अगली यात्रा के लिए भारत की छोटी-छोटी सौगातें खरीद लाया था। मैसूर के हाथी-दांत के बने हाथियों की पंक्ति, जिसमें पहला हाथी सब-से बड़े साइज का होता है और फिर पंक्ति के शेष हाथी छोटे और फिर और छोटे होते चले जाते हैं। सन्दल की खुशबूदार पतली-पतली तीलियों से बने हुए चीनी किस्म के हाथ-पंखे, जो खुलते और बन्द हो जाते हैं; कश्मीर के नगों के जड़ावदार हार और कंगन जो अमरीकी लड़कियों को बेहद पसन्द हैं; हिन्दुस्तानी इत्र, खस और रात की रानी, जिन पर अदन, काहिरा और सिकन्दरिया की सुन्दरियां मर मिटती हैं; सिन्दूर और काजल की डिबियां जिन पर सिंगापुर और इण्डोनेशिया की मोहक लड़कियां जान छिड़कती हैं। और इसी किस्म की अनेक वस्तुएं। मैं ऐसी ही सौगातें सूजी के लिए भी लाता था। मैक्स्फैक्टर की विभिन्न शेडों की लिपिस्टिक, पेरिस का सेण्ट, जापान के चाबियों के गुच्छे, जिनमें एक छोटी-सी टार्च लगी रहती, चाकलेट और अमरीकी सिगरेट। हर लड़की ऐसी वस्तुओं का उपहार पाकर बेहद खुश होती है। सूजी और मैं रेस्त्रां में बैठे आइसक्रीम खा रहे थे और बम्बई से ऐसी ही सौगातों का खरीदा हुआ लिफाफा सामने मेज पर रखा था।

"लाओ! मैं भी तुम्हारी शापिंग देखूं!" सूजी ने आग्रह किया। मैं चाहता था कि सूजी इन चीजों को न देखे, परन्तु मैंने मजबूर होकर, "क्यों नहीं, क्यों नहीं, जरूर!" कहते हुए इजाजत दे दी। उसने लिफाफे में ही चीजों को उलट-पुलटकर देखते हुए लिफाफा मेज पर रख दिया।

"बहुत अच्छी है!" उसने बेजान-से स्वर में कहा। फिर वह दूसरे क्षण अपने अच्छे मूड में आ गयी। और वह मुझसे पहले की तरह छेड़-छाड़ करने लग गयी। वह समझ गयी थी कि ये वस्तुएं भी किसी लूसी, मी-क्यांग या नीलोफर के लिए थीं, जैसे मैक्सफैक्टर की विभिन्न शेडों की लिपस्टिक, पेरिस का सेण्ट या चाकलेट और अमरीकी सिगरेट मैं सूजी के लिए लाता था। उसने साधारण औरतों की तरह मुझसे मेरी प्रेमिकाओं के बारे में नहीं पूछा था और न ही मैंने कभी यह जानने की इच्छा ही व्यक्त की थी कि वह मेरे जाने के बाद किसके संग रंगरेलियां मनाती थी। यह एक मूक समझौता था, एक लक्ष्मण-रेखा थी जिसे पार करने का विचार हम दोनों के मस्तिष्क में कभी नहीं आया था।

हां, एक बार उसने मुझे बताया था कि वह मेरे दिये हुए चाकलेट अपनी भांजी जूली के लिए रखती है।



"जूली बड़ी प्यारी बच्ची है ! बिलकुल गुड़िया-सी लगती है ! हंसती है, तो गालों में इत्ते बड़े-बड़े गढ़े पड़ जाते हैं ।" और वह यह कहकर स्वयं हंसने लग गयी थी और फिर वह अपनी अंगुलियों से अपने गालों को छूकर टटोलने लग गयी थी कि उसके अपने गालों में भी गढ़े पड़ते हैं कि नहीं । उसने बताया था कि उसकी बहन रुबी बांदरा के किसी स्कूल में आरगन बजाती थी और वह वहीं आस-पास ही कहीं रहती भी थी । जूहू जाते हुए वह एक दिन मुझे उसके यहां भी ले गयी ।

किसी मिशनरी स्कूल के लम्बे-से हास्टलनुमा कारीडार में से गुजरकर सूजी ने एक कमरे के द्वार पर दस्तक दी ।

"कौन ? तुम सूजी ! आओ !" उसने दरवाजा खोलकर बाहर झांके बिना ही सूजी को अन्दर आने का निमन्त्रण दिया ।

"आओ, गो-गो !" अन्दर पहुंचकर सूजी ने मेरा परिचय कराते हुए कहा, "यह मेरा मित्र है, गो-गो ! यूनीफार्म से जान ही गयी होंगी कि यह मरचेण्ट नेवी में है । और यह मेरी बहन रुबी ।"

रुबी ने एक भरपूर दृष्टि मुझ पर डाली और फिर वह दूसरे ही क्षण खिड़की से बाहर देखने लगी, जैसे उसकी निगाहे कह रही हों, 'मैं जानती हूं इन नेवी वालों को ।'

कमरे में आवश्यकता से अधिक सामान था । नाविकों की एक बड़ी-सी समुन्दरी पेटी, कार्निस पर पड़े हुए शंख और सीपियों के खिलौने और हांगकांग से लाये हुए 'लाफिंग बुद्धा' को देखकर मुझे विश्वास हो गया कि रुबी भी नेवी वालों की संगति में रह चुकी थी । रुबी की उम्र यही पैंतीस-चालीस वर्ष होगी उसके शरीर पर यद्यपि मोटापा न थ

परन्तु वह अपना आकर्षण खो चुकी थी। उसका चेहरा सांवला था, परन्तु उसकी आंखें सूजी के समान बड़ी-बड़ी और नमदार थीं, जैसे उनमें प्यार उमड़ता चला जा रहा हो। लेकिन उन आंखों के पीछे एक उदासी छिपी थी। सुतवां-सी नाक और कांपते होंठ, जैसे वे भावनाओं के अतिरेक से थरथरा रहे हों। मैं विश्वास से कह सकता हूं कि वह दस-पन्द्रह साल पहले अपनी उभरती जवानी के युग में कयामत से कम न होगी। उसका चेहरा बेहद भावुक था। न जाने क्यों उसका व्यक्तित्व असन्तुलित-सा मालूम हो रहा था, जैसे तेज हवाओं से समुद्र के स्तर पर जहाज लंगर के होते हुए भी कांपने लगता है। कमरे की दीवार पर कोई तस्वीर न थी। सिर्फ कार्निस से जरा दूर पर एक खूबसूरत लकड़ी के सलीब पर ईसामसीह लटका हुआ था। उसके नीचे लोबान जल रहा था जिसकी खुशबू सारे कमरे में रच गयी थी। मैंने इसी किस्म के सलीब रोम में बिकते देखे हैं, और शायद यह सलीब भी किसी नाविक का उपहार ही था। मुझे उस सलीब को देखकर ऐसा जान पड़ा, जैसे रुबी भी किसी अनदेखे सलीब पर लटकी हुई हो, जैसे कोई आन्तरिक वेदना उसकी नस-नस को खींच रही हो और उसका चेहरा दर्द के मारे पीला पड़ता जा रहा हो।

इतने में बाहर बरामदे में से किसी बच्चे के तेज-तेज कदमों की आहट सुनायी दी। शायद यह जूली थी।

"ममी, ममी !" वह भागती हुई अन्दर आयी। उसके हाथों में डबल रोटी और बिस्कुटों का एक पैकेट था। उसे अचानक सूजी की और मेरी उपस्थिति का ज्ञान हुआ और वह बोलते-बोलते रुक गयी। फिर वह धीमे कदमों से हमारे पास आकर खड़ी हो गयी।

"गुड मार्निंग आण्टी !" उसने निहायत भोलेपन से कहा। सूजी ने बढ़कर उसे प्यार किया और उसके हाथों से पैकेट लेकर मेज पर रख दिया। जूली बड़े गौर से मुझे और मेरी कलफ गे अकड़ी वरदी की ओर देखती रही। वह सचमुच बहुत प्यारी बच्ची थी। निहायत भोली-भाली, मासूम ! वह मुझे और मेरी नाविक टोपी, को जिस पर हमारे जहाज के निशान बने थे, टकटकी लगाये देख रही थी। फिर उसने दबी जबान से कहा, "यह डैडी हैं, ममी !" उसकी दृष्टि रुबी पर जमी थी, जैसे वह अपने प्रश्न का उत्तर चाहती हो। रुबी ने बड़ी लाचारी से जूली की ओर देखा। उसकी आंखों में एक गहरी उदासी छा गयी और फिर उसने धीरे से सिर हिला दिया।

"ये तुम्हारे अंकल हैं, जूली डार्लिंग।" सूजी ने मौके की नजाकत को सम्हालते हुए कहा। जूली की आंखों की चमक जैसे क्षण भर में लुप्त हो गयी।

"ये अंकल सदा तुम्हारे लिए चाकलेट भेजते हैं। यह लो ! पिछली बार भी दिये थे न !" सूजी ने अपना हैण्ड-बैग खोलकर मेरे लाये चाकलेट उसके हाथों में थमा दिये।

"इतने ज्यादा !" वह बहुत से चाकलेट देखकर हैरान रह गयी। "थैंक यू, अंकल !" उसने निहायत प्यार और भोलेपन से कहा और वह चाकलेट लेकर कमरे से बाहर भाग गयी।

हम थोड़ी देर तक बैठे बातें करते रहे और फिर हम दोनों चले आये। रास्ते में सूजी ने बताया कि रुबी का भी कुछ वर्ष पहले नेवी में एक मित्र था। रुबी को उससे बेहद मुहब्बत थी और फिर यह बाधा-विहीन मुहब्बत जूली के रूप में प्रकट हो गयी। रुबी बड़ी धार्मिक, खुदा से डरने वाली रोमन कैथोलिक औरत थी। उसे यह विचार खाये जा रहा था कि जूली गुनाह की पैदावार थी। रुबी दुल्हन बनने से पहले मां बन गयी थी ! और अब जबकि जूली बड़ी होती जा रही थी, स्कूल में उसकी फ्रेन्ड्ज उसके डैडी के बारे में पूछतीं, तो वह ठीक से जवाब न दे पाती। रुबी कहती कि उसके डैडी बड़े दूर दूसरे देशों में अपने जहाजसहित गये हुए थे, लेकिन इतना लम्बा विलम्ब जूली के लिए पहेली बना हुआ था। रुबी को विश्वास था कि जूली के डैडी अवश्य वापस आयेंगे। रुबी जो बिन-ब्याही भी थी, जिसका चर्च, जिसके नियम, जिसका खुदा उसे हमेशा ही पापी ठहराते रहेंगे। यद्यपि कोई उससे कुछ नहीं कहता, परन्तु पाप का विचार जैसे उसके शरीर और उसकी आत्मा को अन्दर ही अन्दर खाये चला जा रहा था। मुझे रुबी पर तरस आने लगा।

उससे अगले रोज मेरा जहाज बम्बई



से रवाना होने वाला था और मैं सूजी को कोलाबा छोड़कर वापस आ रहा था, जबकि बाजार की भीड़ में अचानक ऐसा लगा, जैसे सूजी किसी दूकान के बाहर खड़ी थी। लेकिन वह सूजी कैसे हो सकती थी। सूजी को तो मैं अभी उसके फ्लैट में छोड़कर आया था। पास आने पर मैंने देखा, वह सूजी नहीं रुबी थी। दोनों बहनों की रूप-रेखा और चलने-फिरने का ढंग किस कदर मिलता-जुलता था! रुबी शो-केस में लगे हुए एक वेडिंग गाउन को बड़ी चाव भरी दृष्टि से देख रही थी। यह सफेद चमकदार और मुलायम साटन का बना हुआ था। इसके कटावदार, खूबसूरत कालर थे और उसके सामने वाले बटन निहायत महीन और खूबसूरत लेस पर बने हुए थे। एक ऐसा गाउन जो क्रिश्चियन लड़की को औरत बना देता। वह इसके लम्बे, झालर-दार घेरे और दूर तक फैले हुए पल्लू की तरफ देर तक देखती रही, जैसे अभी ही चर्च की घण्टियों के साथ आरगन के स्वर में वह यह गाउन पहने हाल में दाखिल होगी और इसका लम्बा, फैला हुआ पल्लू उठाये छह लड़कियां सफेद फ्राक पहने उसके पीछे-पीछे चल रही होंगी। काफी समय बीत चुकने के बाद वह हिम्मत करके दूकान के अन्दर दाखिल हो गयी।

"यह वेडिंग गाउन कितने का होगा?" उसके चेहरे पर कुंवारियों की तरह एक झिझक और लाली थी।

"दो सौ रुपये का, मैडम!" सेल्समैन ने आगे बढ़कर जवाब दिया। "आप देखना चाहेंगी?"

"नहीं!" वह रुकती हुई बोली, "अभी नहीं। शायद अगले महीने!" उसने सन्देहात्मक ढंग से कहा, और वह दूकान से बाहर निकल आयी।

मैं जब दूकान के पास से गुजरा, तो वह सेल्समैन अपने दूसरे साथी सेल्स-मैन से कह रहा था, "अगले महीने! बेचारी, हर महीने आकर दाम पूछ जाती है। दिमाग चला गया है इसका!"

जब मैं दूर निकल आया, तो मैंने मुड़कर देखा। रुबी उसी दूकान के बाहर खड़ी हसरत-भरी निगाहों से उस गाउन की ओर देख रही थी।

अगली सुबह जब जहाज बम्बई का बन्दरगाह छोड़कर खुले समुद्र में भागने लगा, तो मैं डेक पर खड़ा उस झागदार, झालरदार रेखा को निहायत गौर से देख रहा था जो हमारा जहाज समुद्र के स्तर को चीरकर छोड़ता चला जा रहा था, और जहां मेरी निगाहों में दूधिया झाग में से कोई वेडिंग गाउन समुद्र के धरातल पर उभर-उभरकर फैल रहा था और समुद्र की निर्दयी मौजें उसे उसी तेजी के साथ अपने दामन में समेटती चली जा रही थीं। ●

मदमाप्रूफ : **मां-बाप (एक अमरीकी दिमाग)।**

स्पेग सूट : **नर्स का पहनावा (एक फ्रांसीसी दिमाग)।**

फांस

शानी

दूसरी करवट बदलने का साहस उसे नहीं हुआ, हालांकि मुड़ी हुई किहुनी पर देर तक सिर टिकाये रखने के कारण वह पूरा हाथ ही सुन्न हो गया। गरदन लगातार एक ही जगह डाले रखने से दायें हिस्से और पीठ की मांसपेशियां दुखने लगी थीं। फिर नंगी चटाई की फांसों के अलावा नीचे की सख्त मिट्टी वाला फर्श पसलियों में अलग दर्द पैदा कर रहा था।

वह उठी और दीवार के सहारे पीठ टेककर ऊबी हुई-सी बैठ गयी।

दरवाजे के खुले पल्लों से बाहर के आकाश का जितना टुकड़ा नजर आता था उसमें एक ही तारा चमक रहा था, ठीक उसकी ही तरह धुंधला-धुंधला या डबडबाया-सा···।

अभी वह और कुछ सोचे या करे कि दूर से सहसा मांदर की आवाज जरा तेज होकर बह आयी, उसमें नवयुवतियों के हाथ-पड़ी गुजरियों का लयताल के साथ पटके जाने वाला स्वर 'झन्नक-झन्न··· झन्नक-झन्न' भी था और गीत भी ऐसा गीत जिसका अर्थ और मर्म उसके अलावा और कौन समझ सकता था ?

कभी रात बीते अचानक दूर से आने वाले गीत की आवाज उसे कितनी अच्छी लगती। खासतौर पर तब, जब वह मांदर साथ मिलीजुली होती हो या चुपचाप सोयी पहाड़ियों को झकझोर या घाटियों को खंगाल सहसा आ खड़ी होती हो। लेकिन आज वह गीत मांदर समेत भी उसे अच्छा नहीं लगा। इस तरह के सन्नाटे में अब ऐसा गीत कहीं भीतर गहरे उतरकर कितनी बुरी तरह सालने लगता है···।

उसे लगा, जैसे अचानक जी घबराने लगा है। बेमौसम की उमस, कुछ अजीब-सी बेचैनी और ऐसी छटपटाहट जैसे बंधे हुए डैनों की होती है। बहुत दिनों पहले एक बार यही हुआ था, जब कोसा नदी के पास वाले कोसुम पेड़ के नीचे, चांद-चढ़े उसकी प्रतीक्षा कर रहा था और वह रात तीसरे पहर तक घर से निकल नहीं पायी थी, और जैसे-तैसे करके जब पहुंची भी, तो कोसा जा चुका था—उसे छटपटाने और खीझने के लिए अकेली और बिलकुल अकेली छोड़कर···।

दरवाजा खोलकर वह बाहर निकल आयी। बाहर की फिसलती हवा ने मुट्ठी-भर ठण्डक उसके चेहरे, खुले वक्ष और बगलों में भर दी और सिहरन को सम्हालती-सम्हालती भी वह कांप गयी।

अब तक दूर से आता मांदर का स्वर जरा हलका होने लगा था। गीत के बोल इतने मद्धिम हो गये थे कि केवल

ब्याह के मण्डप का शोर ही वातावरण में रह गया था। लोग जरूर अब लांदा पी रहे होंगे, क्योंकि उसी भीड़ में, नशे में धुत बना हुआ कोई चिल्ला-चिल्लाकर गन्दी गलियां बक रहा था।

वह बड़ी देर तक वहीं अन्धेरे में खड़ी रही।

लो, अब बोटी का भी ब्याह हो रहा है। उसने सोचा, सुबह की सफेदी बिखरने के पहले वह भी गांव छोड़कर जायेगी। ले-देकर एक बोटी ही गांव में ब्याहने को रह गयी, कल से उसका साथ भी छूट जायगा।

हालांकि बोटी उससे आठ बरस छोटी थी, लेकिन जब तक गांव में कुंआरी बैठी रही, झूठमूठ की तसल्ली मिलती रही कि वह अकेली नहीं। इससे पहले इसी गांव में एक-दो बरस के अन्तर से पूरे पांच सहेलियों के ब्याह में वह शामिल हुई थी। अब तो उनमें से प्रायः सभी एक-एक, दो-दो बच्चों की मां बन चुकी थीं।

और अपना मनपसन्द दूल्हा पाकर बोटी कितनी प्रसन्न है। तीन दिन पहले जंगल में पत्ते तोड़ती-तोड़ती बोटी उसे अपने ब्याह की खबर दे, अचानक लिपट गयी थी और उसके दोनों नंगे उरोजों के बीच वाले गढ़े में अपने होंठ भरकर उसने कहा था, 'नीको दीदी, तू मेरे ब्याह में नहीं आयी, तो मैं हल्दी घुलवा लूंगी।'

उसके घर से सब गये थे—मां-बाप, छोटी बहन, दादा और पड़ोस के तमाम लोग, लेकिन सिर्फ वही नहीं गयी थी। जाने क्यों, बोटी के ब्याह में जाने का उसका मन ही नहीं हुआ और मां के बार-बार जिद करने पर भी वह बहाने बनाकर लेट गयी थी।

अकेली वह जरूर हो गयी थी, लेकिन घर में अंधेरा नहीं हुआ। सबके चले जाने के बाद भी देर गये उसके सिरहाने दिया जलता रहा था। उसकी थरथराती लौ पर आंखें अटकाये वह बड़ी देर तक निस्पन्द-सी पड़ी रही थी। लौ से निकलते काले धुएं की लकीरों में सबसे पहले कोसा का सांवला और स्वस्थ चेहरा बना था। पूरे शरीर समेत वह उसके सामने खड़ा हो गया था। फिर उसके बाद एकएक करके वे तमाम सहेलियां आयी थीं—चैती, रामी, बुदरी, हिंगेवे—सब जो ब्याह के बाद फिर कभी नजर नहीं आयी थीं।

शायद रामी का ही ब्याह था जिसमें वह नया-नया घाव लेकर शामिल हुई थी। हालांकि उसके टूटने की बात सब जानते थे, तो भी उसने अपने हावभाव से ऐसा जाहिर किया था जैसे बिलकुल भरी-पूरी हो। ब्याह में इतना हंगामा और शोर उसने इससे पहले कभी न मचाया था। अपने को सिंगारने में ही उसने कितनी देर लगा दी थी! उसकी गरदन से लेकर पेट से जरा ऊपर तक नीली, लाल और सुनहरी मालाएं लदी थीं। गले में रुपयों का हार और हंसली थी, फिर चांदी के कर्णफूल, कलाइयों में गिलट के कंगन, पांव में पैड़ी, बायें कान के पास बालों में खुंसा हुआ छोटा-सा आईना, ककुआ और



कुन्द फूल। जूड़े में चौरी के साथ दूध-जैसी उजली कौड़ियों की सजावट, उनका गुंथाव, कसाव ओर खूब शिकनों वाली चौड़ी किनार की केतकी साड़ी…।

उस रात वह लगातार सुबह तक नाचती रही थी। सारी रात उसने लांदा पिया था और ऊपर से समली के पति ने सलपी पिला दी। जबरदस्ती ही उसे कंधों से भींच अपने पूरे शरीर के भार समेत उसके सीने पर टिककर उसने एक हाथ से उसका जूड़ा पकड़ा था और गरदन ढलकाकर उसके मुंह में आंधी तूम्बी सलपी उलट दी थी और वह अवश हो गयी।

सचमुच उस रात समली का पति बिलकुल कोसा की तरह लगने लगा था—वही बच्चों-जैसा आग्रह, उसी तरह की मुस्कराहट, वैसी ही बातें और उसी अन्दाज में उसका मांदर बजाना। आज भी कोसा की तरह मांदर बजाना गांव में किसी को नहीं आता।

उसने काफी थकित भाव से अपने सिर को पास वाले एक पेड़ के तने से टिका दिया। लाख अपने दिमाग से वह कोसा की बातें निकाल फेंकना चाहती है लेकिन

उससे क्यों नहीं होता ? घूम-फिरकर, बस, उसी की बातें या उसी का चेहरा-मोहरा। आखिर उसमें है क्या ? एक बेईमान आदमी जिसकी सूरत तक से वह आज नफरत करती है।

आज भी वह उन क्षणों को कोसती है जब घोटुल का जरा-सा परिचय उसके लिए जानलेवा बन गया।

सरदी की रातों में एक रात अंगीठी के सामने बैठे नाच से पहले कोसा ने जाने कौन-सी बात कह दी थी कि वह धक्-सी रह गयी थी और वे क्षण भले उसके लिए भारी बन गये हों, लेकिन उसके बाद कई बार घोटुल के भीतरी कमरे में कोसा के बाल संवारते, बाहों में तेल मलते या जूं बीनते-बीनते उसने कोसा की पीठ से सटकर अनजाने ही अपनी गरदन उसके कन्धे पर टेक दी थी—इतने अनजाने कि इसका पता भी उसे काफी दिनों बाद चला।

दरअसल वह कुछ और दिनों की बाट देख रही थी, कुछ और गहरे क्षणों की, लेकिन गांव भर में उनके ब्याह की प्रतीक्षा की जा रही थी। तभी अचानक उसके पूरे परिवार वालों को उसके मामा के यहां दूसरे गांव चला जाना पड़ा। और हालांकि वह महीने भर में ही लौट आयी, लेकिन कोसा नहीं मिला। जाने कब और कैसे वह उसकी आंखों में धूल डालकर घोटुल की एक और लड़की मासे से मिलता रहा था। जब मासे के मां बनने की खबर गांव-भर में फैली, तो कोसा का नाम लिया जाने लगा। बात फैलने पर रस्म और पंचायत के मुताबिक कुछ रुपये, एक सूअर, मुरगी और बिरादरी के लोगों को भात-लांदा देकर कोसा ने मासे से ब्याह कर लिया और विपत्ति से छूट गया, लेकिन लौटकर उसने फिर कोसा से बात नहीं की। कुछ पूछा तक नहीं। न रोयी-गायी, न शिकायत की। हालांकि कोसा ब्याह के बाद दो-तीन बार उसके घर के सामने से गुजरा था और एक शाम तो जब वह जंगल में टोकरा लिये एक पेड़ के नीचे झुकी महुआ चुन रही थी, कोसा ने उसे अचानक आ घेरा था।

तब टोकरा फेंककर उसने कमर से कडरी (छुरी) निकाल ली थी और क्षण-भर के लिए स्तम्भित-सा होकर कोसा रह गया था।

'मेरे शरीर को छुआ तो तेरा पेट चीर दूंगी।' उसने दांत पीसकर कहा था।

कोसा हंसने लगा था, फिर वह हंसता-हंसता आगे बढ़ गया था, 'ले चीर डाल।'

उसने क्षणकाल के लिए कोसा की आंखों में अपनी पलक ठहरा ली थी। कुछ देर देखती रही फिर कडरी फेंककर वह रोने लगी थी।

'मैं तुझसे बात नहीं करना चाहती, कोसा। मैं तेरी···'

अचानक सामने पेड़ों के पास जरा आहट हुई। उसने चौंककर देखा, कुछ नहीं था—केवल सूखे पत्तों का खड़खड़ाना और फिर हवा से धीरे-धीरे फिसलना। लगा, रात आज नहीं थकेगी···।



उस दिन उसने अपनी उम्र का हिसाब लगाया था, तो वह उन्नीस की थी। एक कौतुकवश अपनी जगह लेटे-लेटे उसने पास की दीवार पर पत्थर से उन्नीस लकीरें खींच दी थीं और तब से बराबर उस दीवार पर महीने और बरस के हिसाब से लकीरें जुड़ती जाती हैं।

उन्नीस के बाद जब तीन लकीरें दीवार पर और जुड़ीं, तो एक रिश्ते की बात पास के गांव से आयी थी। लड़का उससे सिर्फ दो बरस छोटा था, लेकिन मर्द की उम्र का क्या है? लड़के के मां-बाप किसी बाजार में ही लड़की देख गये थे, अतः एक निश्चित दिन शराब, लांदा और सूअर की सौगात के साथ बात पक्की कर गये। उसी दिन तय हुआ था कि चांद के तेरहवें दिन जब वह नदी से लौट रही होगी, रस्मो-रिवाज के मुताबिक लड़का आकर उसे भगा ले जायेगा।

चांद निकलने में अभी देर थी और नदी में सन्नाटा पड़ गया था। जल्दी-जल्दी लगभग भागती-सी वह नदी तक पहुंची थी। धक-धक करती हुई, इधर-उधर एक बार देखकर उसने घड़ा पानी में डाल दिया और एक हाथ से घड़े का मुंह पकड़े, और अपनी छातियों को घुटनों

से दबाये वह देर तक नीचे सिर किये बैठी रही थी पर कोई चौंकाने वाली घटना नहीं हुई। वैसे ही बहुत-सा समय बीत गया और वहां से निकलकर बरगद के तले तक आते-आते भी कोई नहीं आया। घड़ा एक ओर रखकर वह घण्टा भर और रास्ता देखती रही और अन्त में घायल और अपमानित-सी रोती हुई लौट आयी थी।

दूसरे दिन पता चला कि लड़के ने उससे ब्याह करने से इनकार कर दिया है। कहता है, नीको उससे बड़ी और मोटी है।

उस घड़ी उसे भले गुस्सा आया हो, पर उसके कुछ महीनों बाद किसी मेले में उसने उस लड़के को देखा, तो उसे हंसी आयी थी। उसे प्रसन्नता भी हुई और तरस भी आया। वह एक दुबला-पतला मुश्किल से अठारह बरस का छोकरा था जो अभी बचपन तक ठीक से छोड़ नहीं पाया था। और उसने सोचा कि अच्छा हुआ जो उस बित्ते-भर के लौंडे से ब्याह नहीं हो गया, वरना वह उसके साथ क्या रहती, उसे तो आखिर भाग ही आना पड़ता।

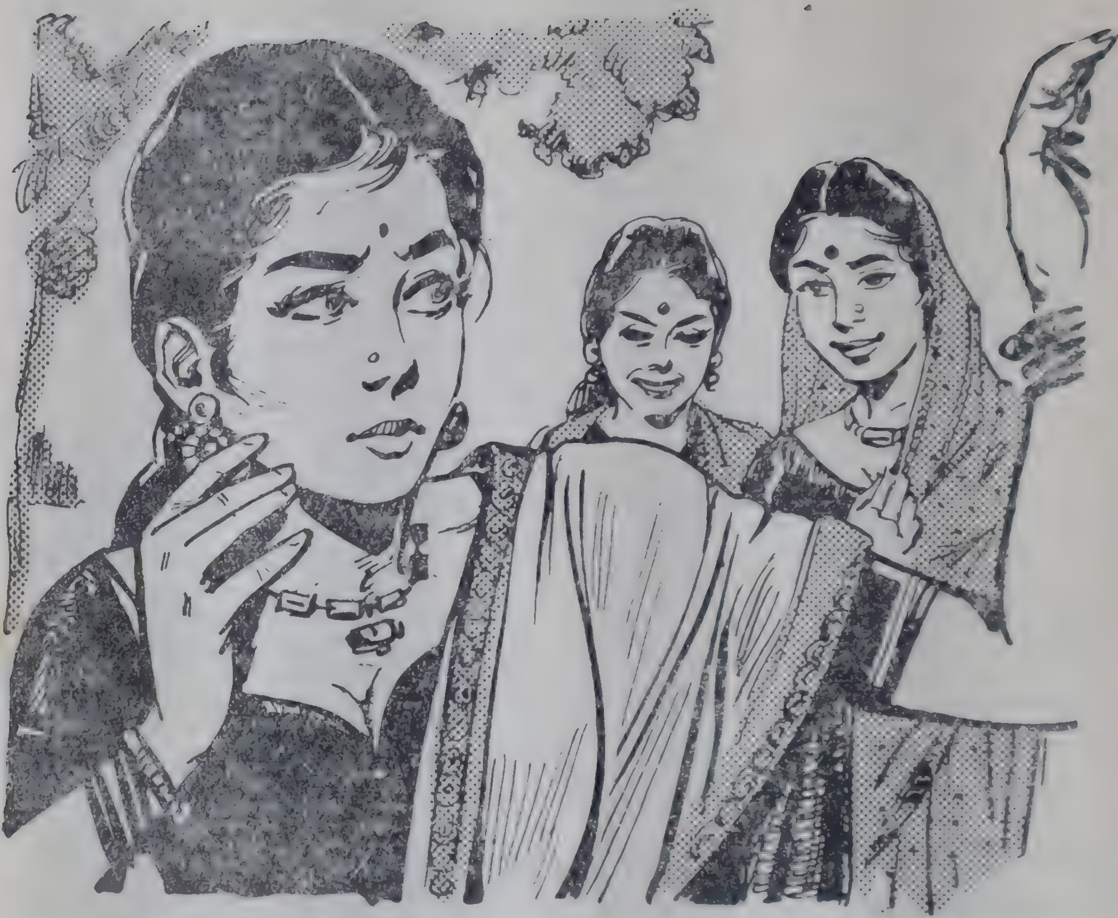
दीवार पर छह और नयी लकीरें जुड़ने के बाद एक बार फिर उसके ब्याह का सिलसिला चला था। पास के गांव में उसके मामा का एक लड़का था जिसने विधुर होने के दूसरे महाने ही गांव भर में इस अधिकार का दावा कर दिया कि वह उसके फूआ की बेटी है, अतः उसे ब्याहने का सबसे पहला अधिकार तो उसी का है।

अधिकार सबने स्वीकार किया भी। थोड़े हीलेहवाले के बाद उसने भी; पर जिस दिन मंगनी हुई उसी दिन लड़के का पिता बीमार हुआ और ब्याह की निश्चित तिथि के डेढ़ माह पहले उसकी मृत्यु हो गयी। और गांव भर में यह बात बैठ गयी कि भले दौलत और सुन्दरता लेकर वह पैदा हुई हो, अपने भाग्य में ब्याह का सुख लिखाकर वह नहीं आयी और बिना किसी शोर-शराबे के चुपचाप दीवार पर उन्नीस के बाद नौ लकीरें और जुड़ गयीं।

उसकी मौसी जब मरी, तो उसके पांच बच्चे थे और वह सिर्फ पैंतीस बरस की थी। मौसी की लाश के पास बैठी-बैठी सारी रात वह यही सोचती रही थी कि पैंतीस बरस में ही मौसी ने पांच बच्चे देखे, पति का सुख पाया और पूरा जीवन जीकर शान्तिपूर्वक चुपचाप मर गयी। लाश उठाकर जब लोग मरघट चले गये, तो अपने कमरे की दीवार के पास खड़ी वह बड़ी देर तक उन लकीरों को देखती रही थी और यकायक एक जिज्ञासा उसके मन में कौंधी थी, 'पैंतीस पहुंचने में उसे कितनी देर है ?'

दरख्त के पास फिर आहट सुनायी दी, लेकिन अबकी बार हवा की नहीं थी। पत्तों के टूटने के साथ दरख्त के पास वाले अंधेरे में आग की दो सुर्ख बिन्दियां चमकीं और जब तक वह आने वालों के विषय में सोचे, उसकी दो पुरानी सहेलियां (जिनका पांच-छह बरस पहले ब्याह हो गया था) उसके पास आ गयीं।

इससे पहले कि वह कुछ कहती,



उनमें से एक ने कहा, "बोटी तेरा रास्ता देखती बैठी है। मण्डप से यह कहकर उठ गयी है कि नीके नहीं आयगी, तो वह हल्दी धुलवा लेगी।"

सहसा उससे कुछ कहते नहीं बना। अन्धेरे में बस जलती हुई आग पर आंखें डाले वह खड़ी रह गयी। कुछ नहीं बोली···कुछ भी नहीं।

"सुना है, कोसा भी आया है।"

और उसे लगा, जैसे बात न कहकर उस लड़की ने एक जलती हुई लकड़ी उसके सीने पर रख दी हो। चेहरे के झुलसे हुये भाव वहां अन्धेरे में लिपपुत गये। उसने अपने-आप से पूछा, 'कोसा गया कहां था ?'

याद आया, ब्याह के एक बरस बाद ही कोसा गांव छोड़कर मासे के साथ कहीं चला गया। शायद किसी दूसरे पहाड़ पर चला गया। पहाड़ के कोसरा के खेत चार बरस बाद अब बांझ होने लगे थे, अतः उस गांव के उजड़ने में कोसा का घर भी खाली हो गया। उसकी आंखों में उजड़े हुए गांव वाला कोसा का वह वीरान घर उभर आया, जहां एक दिन वह जाने कैसे अकेली ही पहुंच गयी थी।

और दूसरी झोंपड़ियों की तरह कोसा

की झोंपड़ी भी टूट चुकी थी। छप्पर की आधी फूस गिर गयी थी और कांड-बांस जमीन पर आ रहे थे। बायें कोने वाला सूअरों का दड़बा खाली था। आंगन में पड़ी हुई डोंगी किसी ने उलट दी थी। उसके पास के छोटे-से मण्डप में कभी कुंदरू की हरी लतरें गुंथी रहा करती थीं. अब उसकी सूखी बेल ही रह गयी थी। खेत से लौटने के बाद कोसा अपनी गायों को उसी डोंगी में दाना देकर दूध दुहा करता था। उस उलटी हुई डोंगी पर देर तक बैठी वह उस उजड़े घर को तब तक देखती रही, जब तक अंधेरा नहीं घिर आया···।

"क्यों, चल रही है ?"

सहसा उसकी सहेलियों में से एक ने कहा, तो वह चौंकी। याद आया कि बोटी उसे बुलवा रही है। जैसे कोसा को एकटक देखती हुई परायी आंखों से पकड़ ली गयी हो, यूं चौंककर उसने हाथ से जलती हुई लकड़ी ली, झटककर उसकी राख झाड़ी और आगे बढ़ती हुई अवरुद्ध कण्ठ से बोली, "अरे, बोटी तो पागल हो गयी है !"

मण्डप तक आते-आते मांदर, ढोल और मोहरी की आवाज और तेज हो गयी। माला-मूंग की सजावट में हलदी का रंग और आंखों में लांदा के डोरे लिये, नवयुवतियों के कई छोटे-छोटे समूह, एक-दूसरे की कमर में हाथ डाले उन्मुक्त होकर नाच रहे थे। वातावरण में हल्ला, गन्दी गालियां, फूहड़ मजाक और नशे में लड़खड़ाती हुई आवाजें घुली हुई थीं, और हवा में तेज गंध···सहसा मशाल के पास, कोने वाले नवयुवकों के झुण्ड में से जब किसी ने आगे बढ़कर अलाप लिया तो जैसे सांप पर पांव पड़ गया हो ऐसे वह ठिठक गयी। जी खूब जोर से धड़कने लगा। गीत की इन्हीं पंक्तियों और इसी आवाज ने एक दिन उसे घोटुल में अनजाने ही कोसा से बांध दिया था। कोसा के सिवा इस गीत को गाना गांव में आज भी किसी को नहीं आता।

हाथ की जलती हुई लकड़ी एक ओर फेंककर वह जल्दी-जल्दी भीतर हो गयी।

जब तक रस्मोरिवाज चलते रहे और वह बोटी के पास बैठी रही, कोसा उसके आस-पास मंडराता रहा। उसका बार-बार दोस्तों को छोड़कर चले आना, उसकी ओर देख-देखकर मुस्कराना, मण्डप के खम्भे से टिककर, बस, एकटक घूरे जाना···।

घबराकर वह बोटी को छोड़ बाहर निकल आयी।

भात की बड़ी हांडी के पास मासे पत्तल बनाती बैठी हुई थी। कोसा से ब्याह के बाद उसने मासे से कभी बात नहीं की थी। ठीक से उसकी ओर देखा तक नहीं था। जाने क्यों उसे देखते ही उसका मन घृणा से भर जाया करता था। लेकिन आज भात देखने के बहाने वह मासे के पास जाकर खड़ी हो गयी। पत्तल सीती हुई मासे ने उसकी ओर देखा और

सादगी से मुस्करा दी। पास ही उसका बच्चा घुटनों चलता सरक रहा था।

मासे से कुछ कह बिना उसने लपककर बच्चे को उठाया, उसका मुंह चुंबनों से भर दिया और मासे की ओर देखकर स्नेह से हंसने लगी, तभी जाने फिर कहां से आकर कोसा उसके सामने खड़ा हो गया। अपने बच्चे की ओर ममता-भरी आंखों से देखते हुए उसने बांहें फैला दीं और बोला, "आ···आ···।"

वह कोसा को नहीं देख सकी, आंख नीची करके चुपचाप ही उसने बच्चे को कोसा की ओर बढ़ा दिया। कोसा ने हंसकर पूछा, "इसे ले जायेगी ?"

केवल क्षणभर के लिए पलक उठाकर उसने कोसा को देखा। शायद कुछ कहती, पर तभी बाहर मोहरी बजने लगी ढोल पिटे, मांदर बजे और नगाड़े की दुड़दुम-दुड़दुम की आवाज में सारा शोर, गुम होकर रह गया। बोटी अब विदा हो रही थी।

अचकचाकर वह वहां से भीतर भागी। बोटी पीढ़े पर आंसू ढालती बैठी थी। बोटी और उसकी उम्र में आठ बरस का अन्तर था। उसने बोटी को कभी इतना महत्त्व नहीं दिया था। वह कभी उसके इतना निकट नहीं रही कि उसके चले जाने का वास्तव में दुःख हो, लेकिन विदा के क्षणों में जब बोटी उसकी बांहों में भिचकर सिसकने लगी, तो उसने उसे जोर से कस लिया और भीतर से उमड़कर सचमुच रोने लगी।

मण्डप में फिर कुछ मशालें जलायी गयीं और फिर नाच शुरू हुआ, फिर मांदर बजे। बोटी को जैसे ही नाच के लिए उठाया गया, वह वहां से चुपचाप खिसक गयी और बाड़ी के पिछले दरवाजे से निकल, अंधेरे में यों बेतहाशा भागने लगी जैसे कोई पीछा कर रहा हो।

जैसे-तैसे घर पहुंचकर वह हांफती हुई चटाई पर ढेर हो गयी। बांह का तकिया बनाकर उस पर सिर रखे वह करवट पड़ी हुई थी। वही बांस की नंगी चटाई थी और नीचे का फर्श पहले की ही तरह सख्त था लेकिन अब न तो पसली की हड्डियों में कोई दर्द हो रहा था और न फांस चुभ रही थी।

कुछ देर उसी तरह लेटे रहने के बाद वह उठी, दिया जलाया और चटाई के पास वाली दीवार के पास बैठकर उस पर बनी लकीरों को गिनने लगी। लकीरें भी कितनी आहिस्ता-आहिस्ता बढ़ती हैं···एक बरस में एक···दूसरे बरस में एक···तीसरे बरस में···

अकस्मात् बिजली की तरह यह बात उसके मन में कौंध गयी कि वह अब तीस की हो गयी है।

उसने दिये की रोशनी को और निकट ले जाकर बड़ी देर तक उन लकीरों को देखा, देखती रही फिर उनके आगे पांच लकीरें और जोड़कर दिया बुझाया और कटी डाल की तरह टूटकर यों पसर गयी जैसे बिलकुल मुरदा हो! ●

अन्तहीन कहानी

विमला गुप्ता

तृप्ता और महेन्द्र ?

गौर से देखा मिन्नी ने। खुली आंखों को थोड़ा और चौड़ाया। नाव झील-तट से काफी दूर थी। हां, वे ही दोनों हैं।

सम्मोहित-सी वह खड़ी रही। महेन्द्र की काटेज का पता चले, तब बात बने। तभी सार्थक हो नैनीताल आना। तभी अन्त हो इस दुखद कहानी का।

"वाकई तुम्हारी च्वायस की दाद देनी पड़ती है, मिन्नी।" झील तट पर खड़ा, मंत्रमुग्ध-सा, एकटक खूबसूरत नावों को देखता हुआ सुहास व्यर्थ में ही चहके जा रहा था।

हां, उनकी नाव तट की ओर ही आ रही है, मिन्नी ने सोचा। "मसूरी में सचमुच बोर हो जाते। यहां की लेक-ब्यूटी का तो, बस, कहना ही क्या !" सुहास ने उस नाव को देखते हुए कहा जिसमें अभी-अभी वे झील का पूरा चक्कर लगाकर लौटे थे।

नाव से उतरकर वे लोग इधर ही आयेंगे। अभी या फिर कभी नहीं। जिस कारण वह यहां आयी है, उसके पूरा होने का अवसर आ गया है।

"उधर चलकर बैण्ड म्यूजिक सुनते हैं, मिन्नी।"

नहीं, उसे महेन्द्र की काटेज का पता लगाना है। सुहास की ओर पलटकर वह बोली, "क्या हम लोग एक बार फिर बोटिंग के लिए नहीं चल सकते, सुहास ?"

"अभी तो झील का चक्कर लगाकर लौटे हैं। फिर बोटिंग ?" उलझकर रह गया सुहास।

उन दोनों की नाव तट से दूर जा रही थी। मिन्नी ने सुहास का हाथ पकड़कर उसे खींचते हुए कहा, "प्लीज वन मोर राउण्ड···।"

आश्चर्यचकित रह गया सुहास। न जाने क्यों मिन्नी कभी-कभी बड़ा अप्रत्याशित और असंगत व्यवहार करने लगती है। कई बार नींद में मुस्कराने लगती है। खाली बैठे-बैठे आप ही आप बड़बड़ाने लगती है। और पिछले तीन-चार दिन से···ओह ! कुछ भी समझ में नहीं आता। कभी इन्द्रधनुष बन जाती है, तो कभी उसके सारे रंग टूटकर बिखर जाते हैं।

अकस्मात सुहास ने अपना हाथ मिन्नी के कन्धे पर रख दिया। ऐसी चौंकी वह जैसे वह सुहास का हाथ न होकर जलता हुआ अंगारा हो। उसके हाथ को परे हटाती हुई बोली, "बचपना नहीं करते, सुहास।"

"अच्छा, छोड़ो, नहीं करते। चलो, बोटिंग करनी है ?" मिन्नी की निगाहें

उस नाव का पीछा कर रही थीं। उसने देखा, वह फिर से तट की ओर आ रही है। ठण्डे स्वर में बोली, "रहने दो, नहीं जाते।"

एक बार फिर उलझा सुहास ! यह क्या हो गया है मिन्नी को ?" आखिर कहां पर चटकी है वह ? चटकी जरूर है, पर खुलती नहीं। पूछ बैठा, "आखिर बात क्या है, मिन्नी ?"

बात ? मिन्नी एकटक उस झील की ओर ताक रही थी जिसके वक्ष पर महेन्द्र और तृप्ता की नाव तिर रही थी। पर अन्दर की आंखों के सामने एक और ही झील बिखरी पड़ी थी, वह झील जिसके किनारे वह चुपचाप खड़ी रहना चाहती थी। डूबना या तैरना तो वह बिलकुल ही नहीं चाहती थी। पर पास ही खड़े महेन्द्र ने उसे धोखे से उसमें धक्का दे दिया। सौभाग्य उसका जो वह तैरकर किनारे आ लगी। पर भींग तो वह गयी थी···आजतक गीली है वह···। सूखेगी वह जरूर, पर तभी जब महेन्द्र को उसी गहराई में धकेल देगी···।

"आखिर तुम इतनी गुमसुम क्यों हो, मिन्नी ?"

मिन्नी गुमसुम न हो तो क्या चहके ? सुहास-जैसे शंकालु व्यक्ति को क्या इस कहानी का प्रारम्भ बतला दे ? फिर तो सारी कहानी अनलिखी रह जायेगी।

सुहास परेशान हो गया। पर तभी उसने देखा, झील-तट पर एक नाव आकर रुकी है और उसमें से तृप्ता और महेन्द्र उतर रहे हैं। खुशी के आवेग में वह लगभग चीख पड़ा, "मिन्नी, महेन्द्र और तृप्ता मिल गये, मैं न कहता था कि···"

मिन्नी को लगा, जैसे उसका हृदय शीघ्र ही धड़कना बन्द करने वाला है। "कब आये, सुहास ?" तृप्ता पूछ रही थी।

"तीन चार दिन हो गये।"

"और हमें खबर तक नहीं दी।"

"पता ही नहीं मालूम था।"

"कहां ठहरे हो ?"

"अशोक में।"

इस बीच मिन्नी एकटक उन दोनों की ओर देखती रही। कितना बदल गया था महेन्द्र ! न वह चंचलता। न वह उन्मादभरा स्नेह। न आंखों में वासना-जनित उछलती नीली चमक। न वह उत्तेजना-भरे बोल। असमय ही जैसे वह जंग खा गया था। और तृप्ता ! एकदम महेन्द्र और अपने नाम के विपरीत। एक विस्फोटक क्षण को भोगती हुई अतृप्ति की सजीव प्रतिमा-सी।

"तुम बताओ, कैसी हो, मिन्नी ?" तृप्ता ही बोले चली जा रही थी।

"ठीक हूं। तुम कहो, कैसी हो ?"

"देख ही रही हो।"

ओह, कितना अर्थपूर्ण उत्तर है तृप्ता का ! एकदम इस झील-जैसा गहरा और रहस्यमय।

"कैसे हो महेन्द्र ?" मिन्नी को ही पहल करनी पड़ी।

"ठीक ही हूं।"

"कालेज में कैसा चल रहा है ?"

"अच्छा ही चल रहा है।"



"आजकल तो छुट्टियां होंगी ?"

"नहीं। हमारे यहां गरमियों की नहीं, जाड़ों की छुट्टियां होती हैं।"

काफी देर बाद सुहास को बोलने का अवसर मिला था। बीच में टपक पड़ा, "यही तो अन्तर है मैदानों और पहाड़ों में।"

मिन्नी ने सब कुछ सुना-अनसुना कर दिया। फिर तृप्ता की ओर देखकर मुस्करायी और बोली, "कैसी पट रही है प्रोफेसर महेन्द्र से ?"

तृप्ता मौन ही रही। सुहास मुस्करा रहा था। महेन्द्र के चेहरे पर कोलतार-जैसा विषाद पुत गया था।

"घर होते हुए भी होटल में क्यों ठहरे हैं ?"

मिन्नी समझ गयी। तृप्ता के इस प्रश्न का लक्ष्य वह नहीं, सुहास है। यह विचार उसके अन्तर को गुदगुदा गया।

"होटल में कोई खास दिक्कत नहीं।" मिन्नी और आगे बढ़ गयी।

"सवाल दिक्कत या आराम का नहीं··· इतनी बड़ी काटेज है। अकेले बोर हो जाते हैं···।" तृप्ता उत्साहपूर्वक बोली।

मिन्नी ने पहचान लिया तृप्ता के अनुरोध के पीछे छिपा अपरोक्ष निमन्त्रण। तभी सुहास बोल पड़ा, "महेन्द्र साहब से भी पूछा है, या मान न मान,मैं तेरा मेहमान।"

महेन्द्र जैसे सोते हुए चौंक पड़ा। बोला, "हां···हां···क्यों नहीं ?" पर मिन्नी ने फैसला कर लिया था, इस कहानी का अन्त महेन्द्र की काटेज में न जाकर ही लिखा जा सकता है। बोली, "भई, पहाड़ों पर रहने वालों के लिए गरमी के मौसम में आने वाले ये मेहमान अच्छा-खासा सिर-दर्द साबित होते हैं···।"

"अच्छा बाबा, होटल ही में रहो। कल सुबह नाश्ते के लिए तो आ सकते हो न। तभी अगला प्रोग्राम तय हो जायेगा।" मिन्नी खिलखिलाकर हंस पड़ी।

रात काफी गहरा गयी।

होटल के सारे कमरों की बत्तियां बुझ गयीं। कमरे में अन्धेरा था, फिर भी मिन्नी सो न सकी। उधर पास ही लेटा सुहास भी करवटें बदल रहा था। उसकी 'पशुताभरी' हर चेष्टा को मिन्नी ने विफल कर दिया था। उसके सामने तो, बस, एक ही सुलझी हुई उलझन थी, एक ही गीली अनुभूति थी···इस आखिरी कहानी का अन्त···महेन्द्र का झील की अतल गहराई में डूबना-उतराना···।

बड़ी ही मजेदार अनुभूति होती है, पर तभी जब गहराई में खुद न होकर कोई दूसरा हो। उसने तो भोगा है इस गीली, लिजलिजी अनुभूति को।···

···पापा प्रेक्टीकल लेने इलाहाबाद गये थे। घर पर वह थी और उसकी देख-भाल करने वाली महाराजिन। और था महेन्द्र—पापा के अण्डर रिसर्च कर रहा था।

एक शाम वह आया।

ऊपर के कमरे में वह अकेली पढ़ रही थी। महेन्द्र को यों अचानक अपने कमरे में आया देख वह भीषण रूप से चौंक पड़ी। वैसे तो वह अक्सर महेन्द्र के साथ चाय पीती, घूमने जाती। एक-दो बार वह उसके साथ पिक्चर भी देख आयी थी। पर यह सब पापा की उपस्थिति में ही होता। एकान्त में मिलने का वह पहला ही मौका था।

बड़ी मुश्किल से अपने को संयतकर वह गौर से महेन्द्र को देखती रही। उसने पाया, महेन्द्र के मुख पर वासना से जन्मी उत्तेजना तैर रही है। घबरायी जरूर, पर शीघ्र ही उसने उसे बातों में उलझा लिया। बोली, "कहो, आज अचानक कैसे चले आये ?"

"यूं ही।"

"आजकल थीसिस का कौन-सा चैप्टर लिख रहे हो ?"

"लिखना बन्द है।"

"क्यों ? क्या पी-एच. डी. नहीं लेनी ?"

"लिखने का मन नहीं करता।"

"क्या पापा चले गये हैं, इसी लिए ?"

"नहीं तो ! बस, अब और खोज नहीं होती।"

"कैसी खोज ?"

"मेरा मतलब रिसर्च से था।"

सब कुछ समझ गयी वह। पर अन-जान बनने का नाटक करती हुई बोली,

"पागल मत बनो, महेन्द्र। यह तुम्हारे कैरियर का प्रश्न है।"

"कैरियर ?" और महेन्द्र एकदम हंस पड़ा—विक्षिप्त-जैसा।

"अच्छा छोड़ो। ठण्डा लोगे या गरम ?"

"आज तो गरमी का सृजन ही ठीक रहेगा।"

"काफी मंगवाती हूं।" और महेन्द्र के उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना ही उसने महाराजिन को दो कप काफी लाने का आदेश दे दिया।

अनायास महेन्द्र ने अपनी कुर्सी उसके पलंग के पास खींच ली और बोला, "मिन्नी, मैं बड़ा परेशान हूं।"

"क्यों ? क्या तृप्ता के कारण ?"

"नहीं, तुम्हारे कारण।"

"मेरे कारण ?" सब कुछ समझ गयी वह। एकबारगी ठण्डी सिहरन उसके सारे शरीर में भर गयी।

"हां, तुम्हारे ही कारण। सच मिन्नी, मेरी समझ में कुछ भी नहीं आ रहा। मेरे प्रति तुम्हारा यह स्नेहपूर्ण, आत्मीयता-भरा व्यवहार उधर सुहास···।"

"इण्टरेस्टेड होने और प्रेम करने में अन्तर होता है, सुहास।"

"वही जानने मैं आया हूं, आखिर तुम किसमें इण्टरेस्टेड हो और किससे प्रेम···।"

"मैं सिर्फ इण्टरेस्टेड हूं तुममें। इसे तुम फ्रेण्डशिप का नाम भी दे सकते हो।"

"और प्रेम ?"

"वह मैं नहीं जानती।"

"तुम अनजान बनने का नाटक करो, पर मैं सब जानता हूं।"

"क्या जानते हो ?"

"यही कि तुम सुहास से प्रेम नहीं करतीं।"

"तुम मेरा अपमान कर रहे हो, महेन्द्र। अपने विचारों को मेरे ऊपर लादने की असफल चेष्टा क्यों करते हो ?"

"यदि सत्य का उद्घाटन अपमान कहलाता है, तो मैं क्षमा मांगता हूं।"

वह एकदम उत्तेजित होकर बोली, "प्रश्न सत्य-असत्य का नहीं, मूल्यों का है, महेन्द्र।"

"समझा। सुहास मूल्यवान, मैं मूल्यविहीन।"

"अपने मूल्य को आंकने की तुम्हें पूरी स्वतन्त्रता है। पर सुहास के···।"

"मूल्यांकन का अधिकार सिर्फ तुम्हें है।"

"महेन्द्र, तुम मेरा अपमान करने पर क्यों तुले हो ? सच, सुहास का मूल्यांकन मैंने नहीं, पापा ने किया है।"

"तुम दूध पीती बच्ची तो नहीं, मिन्नी।"

"पर इतनी उच्छृंखल भी नहीं जो पापा के सपनों की हत्या करूं।"

"और तुम्हारे सपने ?"

वह चुप। क्या कहे ? सच, तब तक तो उसने सपने देखना शुरू भी नहीं किया था।

"तुमने शायद यह नहीं सोचा होगा



कि तुम किसी और के साथ खिलवाड़ भी कर रही हो।"

भड़क उठी वह ! कठोर स्वर में बोली, "चुप रहो महेन्द्र। अपनी प्रतिछाया मुझमें क्यों देखते हो ?"

"मतलब तृप्ता बतलायेगी। मुझसे क्यों पूछते हो ?"

महेन्द्र पहले तो हंसा, फिर मुंह विकृत करके बोला, "खिलवाड़ करने वाली लड़कियों को निराश अथवा अपमानित करना मैंने नहीं सीखा।"

"यही तो अन्तर होता है लड़के-लड़कियों में, महेन्द्र।"

उसे हंसता देख महेन्द्र अचानक खड़ा हो गया। पलंग से सटकर खड़े हो, उसने दोनों हाथ छत की ओर उठा दिये। फिर उत्तेजित स्वर में बोला, "तुम्हारे बिना मैं रह न सकूंगा, मिन्नी। तुम्हारे अभाव में मेरी जिन्दगी अपूर्ण रह जायेगी। रहा सुहास···वह लेक्चरर नहीं, सिर्फ एक पशु है, भूखा पशु···सच, तुम उसके साथ सुखी न रह सकोगी। तुम्हें लेकर मैंने जो रंगीन सपने···"

"क्या कोई रंगीन रोमाण्टिक फिल्म देखकर आ रहे हो, महेन्द्र ?" उसने सहज स्वर में मुस्कराकर पूछ लिया।

तभी महाराजिन काफी ले आयी। स्वादिष्ट भोजन के बीच कंकर-जैसा व्यवधान खड़ाकर दिया काफी ने। एक ही घूंट में महेन्द्र ने गरम काफी का प्याला खाली कर दिया। वह स्वर में व्यंग्य भरकर बोली, "अब तो गरमी का पर्याप्त सृजन हो गया होगा ?"

"कहीं काफी से गरमी का सृजन होता है, मिन्नी ?" कहता हुआ महेन्द्र उसके पलंग पर बैठ गया। वह भयभीत हो गयी। इससे पहले कि वह कुछ कहती, महेन्द्र ने उसे अपनी बलिष्ठ भुजाओं में भरकर पीस-पीस डाला।

कैसा था वह अमानवीय अभूतपूव क्षण ! मुक्ति की कामना लिये हुए भी वह अपने को महेन्द्र की जकड़ से मुक्त न कर पायी। महेन्द्र के अशिष्ट व्यवहार से रुष्ट होकर भी वह उसका विरोध न कर सकी। अन्तर में घृणा के ज्वालामुखी के विस्फोट के बावजूद वह महेन्द्र के प्रति एक अजीब करुणा, सहानुभूति और लगाव से भीग-भीग गयी। उत्तेजना के बावजूद वह बर्फ की ठण्डी शिला बनी पड़ी रही। महेन्द्र ने उसके मौन प्रतिवाद को शायद गलत समझा। बढ़ता गया···और बढ़ता गया···।

और जब सम्मोहन टूटा, तो उसने देखा, एक ही दांव में वह अपना सर्वस्व गंवा चुकी है। नस-नस में गरम लावा पिघल गया। मन की परतों पर जैसे चींटियां-सी रेंग गयी थीं। अवश अंग-प्रत्यंग में प्रतिशोध की ज्वाला फूट पड़ी। वह उठी। महेन्द्र का मुंह नोच लिया उसने। धक्का देकर उसे कमरे से बाहर निकाल दिया। गरदन लटकाये, पिटा हुआ अस्तित्व लिये जब महेन्द्र थके-हारे कदमों से सीढ़ियां उतर रहा था, तो वह जोर-से चीख पड़ी थी, "अपना काला मुंह अब फिर कभी मुझे मत दिखाना।" ···यह थी कहानी की शुरुआत। तब से अब तक उस दुर्घटना की कटु स्मृति नागफनी के कांटे-जैसी उसके कोमल अन्तर में कसकती रहती है।···

अचानक मिन्नी को लगा जैसे उसका शरीर नागपाश में बंध गया है। अंधेरे में टटोला उसने। सुहास का एक हाथ उसके वक्ष पर और दूसरा उसकी गरदन के नीचे था···वह मनुहार कर रहा था और वह थी कि पलंग की पाटी की ओर खिसकी जा रही थी। सुहास के उतावलेपन पर वह खीज उठी। उसे महेन्द्र के वे शब्द याद आ गये···सुहास पशु है···पर उसे तो यह महसूस होता रहा है, जैसे इस संसार का हर पुरुष पशु है···। सुहास की बांहों के कसाव से अपनी रक्षा करती हुई बोली, "यह क्या पागलपन है, सुहास?"

"पौरुष को पागलपन कहती हो, मिन्नी ?"

"पौरुष का मतलब यह नहीं कि समय-असमय ही न देखा जाये।"

"तीन-चार दिन हो गये। इस तरह गरमी की सारी छुट्टियां बेकार हो जायेंगी।"

"तो क्या सिर्फ इसी लिए यहां आये थे ?"

"तुम तो ऐसे नखरे कर रही हो जैसे मैं तुम्हें सात फेरे डालकर नहीं, भगाकर लाया हूं।"

"मानती हूं, बाबा। पर जरा मेरी तबियत का तो खयाल करो।"

सुहास चौंक गया। घबराये-स्वर में बोला, "क्यों, क्या हुआ तबीयत को ?"

"पिछले कई दिन से जी मितलाता रहता है।"

"खट्टी चीजें खाने को तो मन नहीं करता ? ऊनी बेबी सूट बुनने को तो अंगुलियां नहीं मचलतीं ?"

मिन्नी को सुहास का परिहास अच्छा लगा। हलके स्वर में बोली, "न बाबा, न बाबा न।"

"ओह, तुमने मुझे निराश कर दिया, मिन्नी।"

"इस आशा-निराशा के चक्कर को छोड़ अब आराम से सो जाओ।"

सुहास के सामने सोने के अलावा और कोई चारा नहीं था। और मिन्नी जानती थी, सुहास की अतृप्ति ही इस कहानी के अन्तिम अंश को पूरा करेगी।...

...दूसरे दिन वे महेन्द्र की काटेज की ओर रवाना हो गये।

झील के पास ही एक पगडण्डी ऊपर महेन्द्र की काटेज को जाती थी। उस पर चढ़ने से पूर्व, मिन्नी पलटी और झील-तट



पर आकर खड़ी हो गयी। एकटक झील की ओर देखती हुई वह उस गहराई की तलाश में जुटी थी जिसमें महेन्द्र को धकेलना था।

"मिन्नी।"

सुहास का शुष्क स्वर सुन झील-वासिनी मिन्नी लौट आयी। पलटकर उसने सुहास के मुख की ओर देखा। उसकी आंखों में पशुता-भरी एक भूख समायी हुई थी। एकदम प्रफुल्लित हो वह सुहास के साथ पगडण्डी पर चढ़ने लगी।

पर्वत-शिखरों पर उगे लम्बे-लम्बे दरख्तों की चोटियां अभी तक धुंधलके में डूबी थीं। दरख्तों के नीचे झाड़ियां थीं और ऊबड़खाबड़ रास्ते में छोटे-बड़े बादामी रंग के पत्थर बिखरे पड़े थे। चलते-चलते वह पूछ बैठी, "क्यों सुहास, तुम तृप्ता और महेन्द्र को तो खूब अच्छी तरह जानते ही हो···।"

"हां, इसमें कौन-सी नयी बात है। महेन्द्र मेरा प्रतिद्वन्द्वी था और तृप्ता मेरी सहायक।"

"वह कैसे ?"

"तृप्ता न होती तो महेन्द्र तुमको ले उड़ता।"

सुहास के तर्क को सुनकर वह हंस पड़ी। फिर गम्भीर होकर बोली, "शायद तृप्ता की जिन्दगी के दूसरे पक्ष को नहीं जानते तुम ?"

"नहीं तो, वह क्या है ?"

"कालेज में सारी फ्रेण्डस तृप्ता की मजाक उड़ाती थीं।"

"क्या कहती थीं ?"

"जाने दो, बहुत गन्दी बात है।"

"बतलाओ भी···।"

"पब्लिक कैरियर कहती थीं।"

"ऐसा !" सुहास एक क्षण को ठिठककर खड़ा हो गया। उत्साह के कारण उसकी लोलुप आंखों चौड़ गयीं।

मिन्नी सन्तुष्ट हो गयी। उसका हर तीर निशाने पर बैठ रहा था। कहानी के अन्त की ओर सन्तोषजनक प्रगति हो रही थी।

महेन्द्र के यहां पहुंचकर मिन्नी ने देखा, महेन्द्र लान में बैठा बासी अखबार पढ़ रहा है। तृप्ता शायद रसोईघर में नाश्ते का प्रबन्ध कर रही थी।

लान में ही बैठे वे दोनों। महेन्द्र ने अखबार एक ओर रख दिया। पैर सिकोड़-कर वह तनाव-भरी मुद्रा में बैठ गया, बोला, "नैनीताल तो पहली बार ही आयी हो न, मिन्नी।"

"हां, शायद पहली और अन्तिम बार।"

"क्यों, क्या जगह पसन्द नहीं आयी ?"

"देखने को है ही क्या ?"

"कोई देखना चाहे तो दसियों चीजें हैं, टिफिन टाप, चाइना पीक, भुवाली, रानी···।"

सुहास मौन बैठा था। तभी तृप्ता बाहर आयी। दोनों को देख खुशी से चहक उठी। बोली, "बड़ी देर कर दी आप लोगों ने। नाश्ता लगवाऊं ?"

"हां···हां···लगवाओ···।" महेन्द्र बोला।

सब लोग अन्दर जाकर, नाश्ता खत्म-कर एक बार फिर से बाहर लान में आकर बैठ गये। इस बार तृप्ता सक्रिय थी। सुहास से पूछने लगी, "अब तक क्या-क्या देख लिया आप लोगों ने ?"

"अभी तो कुछ भी नहीं देखा। मिन्नीजी इजाजत दें, तब न।"

तृप्ता हंस पड़ी। सन्दर्भ समझकर मिन्नी एकदम सिन्दूरी हो गयी।

"तो मिन्नी का इतना कहना मानते हैं आप।"

"क्या करें, मानना पड़ता है। कहते हैं, सब्र का फल मीठा होता है।"

"तो आजकल आप कड़वे फलों का मजा ले रहे हैं।"

"कड़वे फल और मजा ?" सुहास हंस पड़ा।

मिन्नी सोच रही थी, कहानी के अन्तिम अंश के नायक-नायिका खूब सजग हैं। तभी उसकी दृष्टि महेन्द्र पर पड़ी। वह दूर एक ऊंची चोटी को एकटक देख रहा था। मिन्नी पूछ बैठी, "क्या देख रहे हो, महेन्द्र ?"

"चाइना पीक को।"

"कभी गये हो वहां ?"

"नहीं। सुना है, बड़ी कठिन चढ़ाई है। सारा दिन लग जाता है आते-जाते। पर वहां से स्नो-व्यू बड़ा जबर्दस्त दिखलायी देता है।"

"तो कभी गये क्यों नहीं ?"

"तृप्ता राजी हो, तब न।"

"लगता है तृप्ता के कहने में चलते हो ?"

"और कोई चारा भी तो नहीं है।"

तभी तृप्ता बीच में टपक पड़ी, "बड़े सीधे बन रहे हैं।" फिर सुहास की ओर देखकर कुटिलतापूर्वक मुस्करा पड़ी।

मिन्नी ने सुझाव दिया, "चाइना पीक जाने का प्रोग्राम क्यों न बना लें ?"

"मुझे कोई आपत्ति नहीं।" महेन्द्र निर्विकार भाव से बोला।

"न बाबा, अपने बस का नहीं वहां जाना।" तृप्ता जैसे घबरा गयी।

"तुम्हारे लिये डांडी या पानी का प्रबन्ध कर देंगे।" मिन्नी ने सुझाव दिया।

"उसमें जाना तो और खतरनाक है। एक फुट का ऊबड़-खाबड़ रास्ता। जरा पानी का पांव फिसला कि बेचारे महेन्द्र बाबू विधुर हो जायेंगे। फिर इस उम्र में दूसरी शादी भी नहीं होनी।"

मिन्नी और सुहास की तेज हंसी में तृप्ता का हलका स्वर खो गया। सुहास ने अपना फैसला देते हुए कहा, "तृप्ता अकेली बोर हो जायेगी। फिर पिकनिक में क्या मजा आयेगा ?"

"मेरे खयाल से अगर सुहास बाबू तृप्ता को अपनी कम्पनी दे दें तो···।" महेन्द्र अत्यन्त धीमे स्वर में बोला।

मिन्नी खुशी के कारण फूल गयी। तो शिकार खुद शिकारी के पास चला आया था। तभी सुहास बोल पड़ा, "वण्डरफुल। मैं भी यही सोच रहा था

कि···पर इसी डर से नहीं बोला कि कहीं आप लोग बुरा न मान जायें। वैसे मैं भी चाइना पीक की मुश्किल चढ़ाई में कोई इण्टरेस्टेड नहीं था।"

और मिन्नी सोच रही थी, कई बार परिस्थितियों का मनचाहा संयोग कितनी सरलता से जुट जाता है।···

···कितनी दुर्गम खड़ी चढ़ाई। कितना ऊबड़-खाबड़ रास्ता! ऊपर पहुंचकर मिन्नी थककर चूर-चूर हो गयी। पर लगा, जैसे वह दुनिया की छत पर आ गयी है। बर्फ-घुली हवा ने जब उसके रक्ताभ, तमतमाये गालों को सहलाया, तो बड़ी सुखद अनुभूति हुई।

महेन्द्र का अस्तित्व उदासी के गाढ़े घोल में डूबा हुआ था। मिन्नी ने सोचा, क्या यह वही महेन्द्र है जिसने उसे अपने आलिंगन-पाश में···

"वह देखो, मिन्नी···। बर्फ से ढंके पर्वतों की कतार···!" महेन्द्र का स्वर सुनकर वह चौंक पड़ी। बर्फ से ढंके पहाड़ों को देखने से फायदा? पूछ बैठी, "क्या यहां से तुम्हारी काटेज दिखलायी दे सकती है, महेन्द्र?"

फीकी-सी मुस्कान तैर गयी महेन्द्र के चेहरे पर। उखड़े स्वर में बोला, "दिखलायी तो नहीं दे सकती, पर लोकेशन बतला सकता हूं···।"

"चलो वही बतलाओ···।"

"वह देखो, ऊंची-सी पहाड़ी है न, झील के पूर्वी तट से परे। उस पहाड़ी की दूसरी ओर घने दरख्तों का जो झुरमुट दिखलायी दे रहा है न···।"

मिन्नी कुछ भी नहीं देख पा रही थी—न पहाड़ी, न झील न महेन्द्र, न पेड़ों का झुरमुट, न महेन्द्र की काटेज···

"तुमने यहां आकर अच्छा नहीं किया, मिन्नी।" महेन्द्र बोले जा रहा था।

मिन्नी कुछ भी नहीं सुन पा रही थी। वह सिर्फ देख रही थी, महेन्द्र की काटेज में उसके ड्राइंगरूम को।

"तुमसे सामना न हो, इसी लिए दिल्ली छोड़कर यहां चला आया था···।"

मिन्नी देखे जा रही थी, ड्राइंगरूम में तृप्ता और सुहास को। एकान्तवास में दो अतृप्त आत्माओं का मिलन···।

"उस गलती के लिए मैं आज तक अपने-आपको क्षमा नहीं कर पाया हूं।"

सुहास को आज कई दिन बाद अवसर मिला है; मिला क्या, दिया गया है। अब तो कड़वे फलों की जगह मीठे फल मिल रहे होंगे···कहता था न, सब्र का फल मीठा होता है।

तृप्ता और सुहास को आलिंगनबद्ध देख मिन्नी खुशी के कारण सिहर उठी। वर्षों की साध आज पूरी हो गयी।

"तुमसे यूं आकस्मिक भेंट हो जायेगी, मैंने स्वप्न में भी नहीं सोचा था। पर चलो अच्छा ही हुआ···।"

अच्छा ही हुआ। एक बार वह डूबी थी झील की अतल गहराई में। आज महेन्द्र डूब रहा है। और मजा यह कि

डूबने पर भी उसे यह नहीं मालूम कि वह डूब रहा है।

"आज हमारा हिसाब-किताब बराबर हो गया। न लेना, न देना। बड़ा भारी बोझा उतर गया आत्मा से।"

इस बार भयभीत हो कांप गयी मिन्नी। तो क्या महेन्द्र जानता है कि वह डूब रहा है···तभी तो···

इतनी देर में पहली बार दृष्टि घुमायी मिन्नी ने। दूर, उत्तर दिशा में देखा, कोहरे के बड़े-बड़े बादलों ने बर्फ से ढंकी पहाड़ियों को अपने आवरण में छिपा लिया था।

तृप्ता और सुहास···।

एक नयी अनुभूति ने उसके अस्तित्व के रेशे-रेशे को छटपटा दिया। कहानी का अन्त कहां हुआ? यह तो प्रारम्भ है, जहां बर्फ से ढके पहाड़ कोहरे से ढंके हैं और एक बार वह फिर हारी है। एक बार फिर उसका सर्वस्व लुटा है···इस बार सुहास के माध्यम से।

महेन्द्र तो केवल मूक अभिनेता बना उसके सामने खड़ा है।···

●

मंगल दीप

नवलबिहारी मिश्र

यदि जरा भी अन्दाजा होता कि रज्जन इतना कंजूस है, तो क्यों अपनी दुर्दशा कराने उसके लड़के की बारात में जाता? एक तो जगह ऐसी वीरान—बस स्टेशन से भी काले कोसों दूर। दूसरे, बारात-जैसे भिन्न-भिन्न बसों पर टुकड़े-टुकड़े आयी थी, वैसे ही जा भी रही थी। योजना यह थी कि जिस असबाब के साथ, जिस बस पर जिसको चढ़ना मिले वह मौका न चूके।

आखरी बैंच में हम तीन बचे थे—ठाकुर नगीनासिंह, दिवाकरजी और मैं। और दुर्भाग्य से सबसे झगड़े का असबाब लोग हमारे मत्थे छोड़ गये थे—लोटों और बड़े-बड़े पीतल के दीपकसहित दो मंगल घट, दुलहा-दुलहिन के लिए पीतल के पायों वाला बड़ा-सा पलंग और कई टोकरे पकवान।

राम-रामकर बस आयी, तो जगह मिलने में बड़ी कठिनाई नहीं हुई। परेशान किया असबाब ने। पलंग और टोकरे तो छत पर लद गये, पर मंगल घटों ने नाक में दम कर दिया। बड़े झगड़े और खुशामद के बाद एक तो ड्राइवर के बगल में रखा गया और एक अपर क्लास के दरवाजे के निकट, जहां मैं बैठा। मेरे दोनों साथियों को लोअर में जगह मिली।

समय पाकर बड़ी-बड़ी मुसीबतें कट जाती हैं। जब कण्डक्टर साहब अपने सब दोस्तों से मिल चुके और चाय-नाश्ते से निवृत्त हो चुके, तो ड्राइवर साहब नमाज पढ़ने चले गये। जब वे भी लौट आये, तो देखा गया कि इंजन प्यासा है। इसका भी प्रबन्ध हुआ पर दस मिनट बस इसलिए न चल सकी कि एक खां साहब ने खरबूजे खरीदे थे, और खरबूजे वाला पैसे भुनाने गया था। अन्त में केवल पौन घण्टा देर करके बस चल ही पड़ी और मैंने सन्तोष की सांस ली।

कुछ हवा लगी, तो मैंने पीछे मुड़कर सिंहावलोकन किया। ठाकुर नगीनासिंह बन्दूक दोनों हाथों में थामे अपने एक समवयस्क यात्री से शिकार की डींगें हांक रहे थे। दिवाकरजी एक युवती के निकट बैठे हुए थे। अधिक रोमाण्टिक लगने के लिए उन्होंने अपने सावधानी से संवारे हुए बाल छितरा लिये थे।

अपर क्लास में मेरे आगे वाली सीट पर एक दुबले-पतले महाशय पतली मोहरी का पायजामा घुटनों से नीचे तक का खद्दर का कुरता और उसके ऊपर विचित्र काट की डबलब्रेस्ट फुन्दोंदार कम्बल की बनी हुई सदरी पहने अखण्ड वार्त्ता कह रहे थे, और उनके दाहिने-बायें बैठे यात्री बड़ी

भक्ति से सुन रहे थे। बस के वयोवृद्ध इंजन की घरघराहट के बीच जो कुछ सुनायी पड़ता था वह बहुत ही असम्बद्ध-सा था—

"कबिरा···खड़ा···बजार में···लिये ···लुकाठी हाथ। वाह, क्या बात है कबीर की ! कितने ऊंचे खयाल हैं उसके ! और तुलसी ! उस पर तो मैं आशिक हूं। घन्···घमण्ड्···घन्···गरजत···घोरा। जैसे सचमुच बादल गरज रहे हों। भाई, मैं तो जब कभी यह चौपाई सुनता हूं, तो मेरा छाता अटोमेटिकली खुल जाता है। वाह !"

इसी प्रकार हठयोग, आर्ट, अमीर खुसरो, इण्डियन ड्रामा, फलित ज्योतिष आदि पंचमेल विषयों पर उनकी बातों की अटोमेटिक मशीनगन लगातार चल रही थी और बीच-बीच में उनके पड़ोसी 'ठीक कहते हो, मिरजाजी' कहकर दाद देते जाते थे।

अकस्मात मिरजाजी खड़े हो गये। मैंने देखा, वे विस्मय और भय की मुद्रा में मेरे सामने रखे हुए मंगल घट की ओर देख रहे थे। मिरजाजी ने अपना चश्मा साफ किया और झुककर घट की ओर देखने लगे। उनके सिर के आकार को देखते ढीली गांधी टोपी नीचे गिर पड़ी।

टोपी की ओर बिलकुल ध्यान न देते हुए मिरजाजी ने बड़ी उत्तेजना में कहा, "यह···यह···मेरा मतलब घड़े पर रखा



हुआ यह चिराग···किसका है ?"

"मेरा है, मिरजाजी," मैंने कहा।

"आपका ? मतलब आपका ?" वे आश्चर्य की मुद्रा में बोले, "मेरा मतलब, कहां पाया आपने ?"

"एक बारात में गया था," मैंने कहा, "वहीं लड़की वालों की ओर से मंगल घट के साथ दो मिले हैं।"

"दो ? मेरा मतलब दो ?" वे तीखे स्वर में बोले, "दो कैसे हो सकते हैं ?"

"जी, दो मिले हैं।" मैंने कहा, "एक वह रहा···ड्राइवर के निकट।"

"आपको इन चिरागों की बनावट कुछ अजीब नहीं लगती ?" मिरजाजी ने बहुत धीमे तथा गोपनीय स्वर में पूछा।

"जी !" मैंने कहा, "अपने इधर ऐसे नहीं बनते। राजस्थान के कुछ जिलों में इनका चलन है !"

मिरजाजी बैठ गये, पर अब वे बहुत बेचैन तथा उद्विग्न थे। कभी रूमाल से मुंह पोंछते, कभी उसे तहाते, कभी फिर खोलकर उससे टोपी झाड़ते। कभी खिड़की के बाहर देखते, कभी घट की ओर।

संयोग से इसी समय बस किसी स्टेशन पर रुकी ? मिरजाजी नीचे उतरकर कुछ देर तो इधर-उधर टहलते रहे, फिर मुझे सम्बोधित करके बोले, "बाबूजी, आपसे कुछ बात करना चाहता हूं··· तखलिये में !"

"जरूर।" कहकर मैं उतर पड़ा। मिरजाजी के व्यक्तित्व ने मेरे अन्दर बड़ा कुतूहल पैदा कर दिया था।

"एक बात कहूं, अगर गुस्ताखी मुआफ हो।" मिरजाजी विनय से बोले, "ये चिराग असगुन की चीजें हैं। जिस घर में जायेंगे उसे तहस-नहस कर डालेंगे। इन्हें फेंककर अभी छुटकारा पाइए। मेरी बात मानिए।"

"ऐसी क्या बात है मिरजाजी ?" मैंने पूछा, "और इनका फेंकना तो मेरे लिए मुमकिन नहीं। जायदाद मेरी नहीं, दुलहे के बाप की है और वह भी पिछली बस से आगे जा चुका है।"

"न सही आपकी।" मिरजाजी ने मुझे समझाते हुए कहा, "आप नौशे के खैरख्वाहों में से तो हैं। आप का फर्ज है कि उसके सिर से यह बला टाले।"

"यह मुमकिन नहीं, मिरजाजी।" कहकर मैं बस पर चढ़ गया क्योंकि कण्डक्टर साहब दूसरी बार सीटी बजा चुके थे। मिरजा साहब भी अपनी जगह पर जा बैठे। पर उनका सारा शरीर थरथर कांप रहा था।

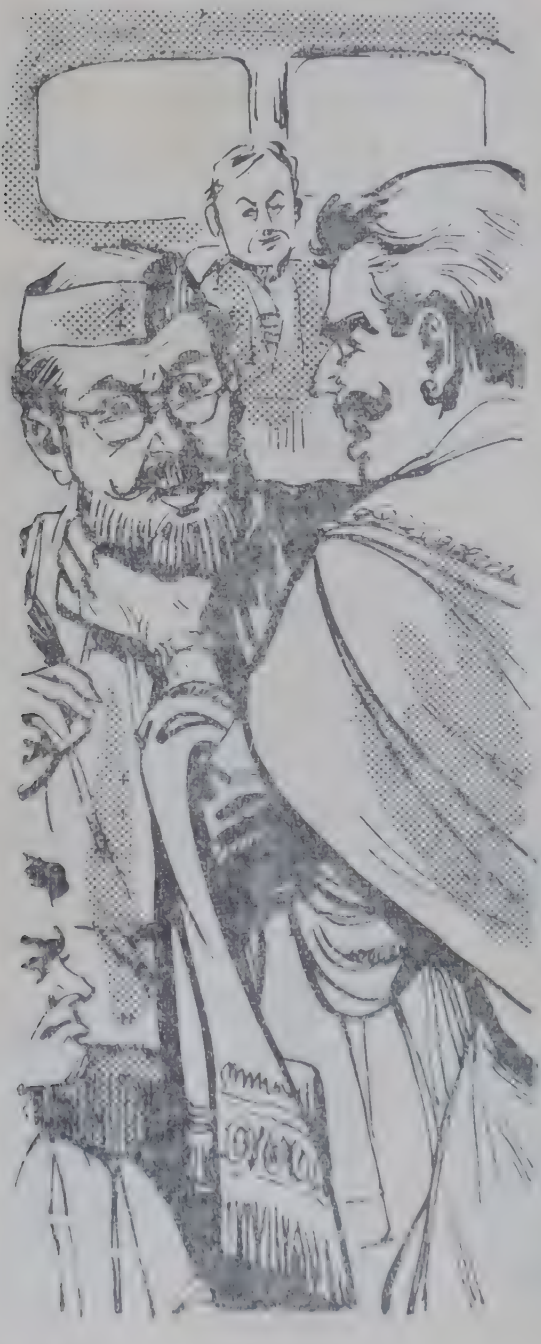
"क्यों, दिवाकरजी," मैंने लोअर क्लास की ओर घूमकर कहा, "कुछ पानवान बचे हैं आपके पास ?"

"थे तो बहुत-से," दिवाकरजी बोले, "पर ठा. नगीनासिंह छह पान एक साथ खाते हैं। अवश्य खतमकर डाले होंगे। बट नैचुरल।"

"अभी बहुत हैं, भाई साहब।" ठाकुर साहब एक हाथ में बन्दूक और दूसरे में पान का डिब्बा लेकर मुसाफिरों की गठरियों और उनके पैरों के जंगल में से

होकर मेरी और बढ़ाते हुए बोले।

मैं पान लेने पीछे घूमा ही था कि पड़ोस के मुसाफिर अचानक 'हां, हां, यह क्या करते हो, मिरजाजी' कहकर चिल्ला उठे। घूमकर देखा, तो मिरजाजी खिड़की के पास थे, और मेरे सामने घट पर से दीपक गायब था।



"रोको, रोको। गाड़ी बैंक करो।" कहते हुए तथा यात्रियों के पैर रौंदते हुए ठा. नगीनासिंह अपर क्लास में थे और मिरजाजी की गरदन उनकी मुट्ठी में थी।

कई क्षण तो मेरी समझ में कुछ आया ही नहीं और बस भी रुकते-रुकते सौ-दो सौ गज आगे बढ़ गयी। रुकते ही सारे यात्री एक साथ टीका-टिप्पणी कर उठे। और सबसे ऊंची आवाज थी ठाकुर साहब की, "क्यों बे, तू पागल है या उठाईगीरा ?"

मिरजाजी जब तक इस कठिन प्रश्न का उत्तर दें तब तक उनकी खोपड़ी कई बार सामने की दीवार से लड़ चुकी थी तथा उनकी नाक से रक्त टपक रहा था।

और गाड़ी बैंक करने पर एक अनहोनी बात और हो गयी। दीपक सड़क के किनारे पड़ा हुआ अनायास मिल गया!

इस प्रकार खोई हुई चीज कहीं मिलती भी है ?

बस फिर चल पड़ी। थोड़ी देर यात्री इस घटना पर भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणों से भाष्य करते रहे पर शीघ्र ही उत्तेजना शान्त हो गयी। लोग पहले की तरह ऊंघते हुए अपने पड़ोसियों पर लुढ़कने लगे।

अब तक मैंने इन दीपों को ध्यान से देखा भी न था। इस घटना के बाद स्वभावतः थोड़ा कुतूहल हुआ। अवश्य ही दीपक की बनावट विचित्र-सी थी। प्रत्येक

का वजन आध सेर से कम न होगा। ऐसा जान पड़ता है कि कारीगर ने पहले उसे कटोरे के रूप में ढाला होगा। बाद को एक सिरे पर ठोंक-पीटकर एक नोक के रूप में निकली हुई बत्ती रखने की नाली बनायी होगी। इस प्रक्रिया में कटोरे का आकार गोल के स्थान पर कुछ अण्डाकार हो गया था। अन्त में दूसरे सिरे पर अंगुली डालकर दीपक उठाने के लिए एक छल्ला अलग-से जड़ा गया जान पड़ता था।

क्या खास बात थी इन दीपकों में जिनके कारण मिरजाजी इतने उत्तेजित थे, यह समझ में न आ रहा था। बेचारे चुपचाप नाक रक्तरंजित रूमाल से दबाये बहुत दुखी बैठे थे। पहले तो मेरे हृदय में उनके प्रति रोष था, पर अब मुझे दया आ रही थी।

अगले स्टाप पर एक हैण्डपम्प देखकर मैंने मिरजाजी को आग्रह करके नीचे उतारा। बहुत कहने-सुनने पर उन्होंने मुंह धोया। दो-एक बार इनकार करके एक पान भी खाया।

बस चल रही थी। थोड़ी देर बाद ऊंघने वालों की श्रेणी में मेरा भी नाम था। पता नहीं कितनी देर सोया, पर जब आंख खुली, तो देखा, मिरजा साहब मेरा कन्धा पकड़कर धीरे-धीरे झकझोर रहे थे। बोले, "भाई साहब, आगे जगह खाली हो गयी है। आप इधर आकर आराम से बैठें।"

बात वाजिब थी। मैं आगे जाकर मिरजाजी के पास ही बैठ गया। कुछ देर चुप रहकर बोले, "भाई साहब, एक अर्ज करूं, बुरा तो न मानेंगे?"

"फरमाइए।" मैंने कहा।

"पीतल आजकल बाजार में क्या भाव बिकता है, जानते हैं?" उन्होंने पूछा।

"नहीं, मिरजाजी, मुझे नहीं पता।"

"तो मैं बतलाता हूं। पिछली धनतेरस को साढ़े तेरह रुपये सेर था।"

मैं कुछ समझ न पाया। जिज्ञासा-भरी दृष्टि से उनकी ओर देखते हुए चुप रहा।

"मैं खामख्वाह बकवास नहीं कर रहा हूं।" वे बोले, "मुझे पागल न समझिए। मेरा मतलब यह है कि ये दोनों चिरागों में लगभग सेर भर पीतल होगी। यह लीजिए पचास रुपये। इन्हें मेरे हाथ बेच दीजिए। बड़े सबाब का काम होगा।"

"क्या करेंगे आप इनका?" मैंने आश्चर्य से पूछा।

"कहीं गहरे दफनकर दूंगा इन्हें।" वे बोले, "सौ दो सौ साल के लिए तो आफत टल ही जायगी।"

"मिरजाजी!" मैंने बड़े प्रयत्न से अपने धैर्य की रक्षा करते हुए उत्तर दिया, "आप को बतला चुका हूं कि यह सामान मेरा नहीं है। किस बिरते बेच दूं आपके हाथ। ऐसा ही है, तो चलिए मेरे साथ। दुलहे के बाप से आपका सामना करा दूं। आप दोनों जैसे चाहें निबट लें।"

बड़ी देर मिरजाजी गम्भीर चिन्ता में मग्न रहे। कई बार कुछ कहना चाहा, पर चुप हो गये। अन्त में मानो अपना सारा साहस एकत्र करके बोले, "भाई साहब, मेरी कहानी सुन लीजिए। उसके



बाद जैसी राय देंगे वैसा करूंगा।"

"सुनाइए," मैंने कहा।

"पहले आलमी जंग से लौटकर मैंने आला खानदान की एक लड़की से शादी कर ली।" मिरजाजी अपने प्रारम्भिक यौवन की मनोरंजक घटनाओं का संक्षिप्त वर्णन करने के बाद बोले, "पच्चीस बरस हम दोनों बड़े प्रेम से रहे। एक लड़का भी हुआ, पर बड़ा होने के बाद वह आवारा निकल गया और जाने कहां भाग गया। उसके बाद बेगमसाहिबा बीमार रहने लगीं और उनके कोई औलाद हुई ही नहीं।

"हम दोनों एक बड़े शहर के बाहर अच्छा-सा बंगला बनवाकर रहने लगे। फ्रांस और इंगलैण्ड में रहकर मैंने वर्जिश करना तथा अपना काम खुद करना सीख लिया था। बंगले के आसपास मतलब भर की खेती थी, और चहारदीवारी के अन्दर अपनी मशक्कत से जरूरी सब्जियां और फल-फूल पैदा कर लेता था। बहुत खुश और बेफिक्र थे हम लोग।

"एक शाम मैं बंगले के पिछवाड़े··· फावड़े से क्यारियां बना रहा था। जमीन जरा कड़ी थी। जोर से फावड़ा चलाया तो 'खन-सी' आवाज हुई और सारा हाथ झनझना गया। मैं बेहोश-सा होकर बैठ गया। ऐसा जान पड़ा, मानो एक आठ फुट का 'राक्षिस' मेरे सामने खड़ा है। जब तबीयत जरा ठिकाने हुई, तो देखा, कहीं कोई न था। उस जगह खोदा तो ऐसा

जान पड़ा कि कोई धात की चीज फुट भर मिट्टी के नीचे दफन है। क्या थी वह चीज, जानते हैं ? इन्हीं-जैसा एक पीतल का चिराग।

"उस दिन और काम न हो पाया। चिराग उठाकर मकान के अन्दर ले गया और एक कोने में डाल दिया। दूसरे दिन सवेरे चाय के वक्त मैंने उसे बेगम साहिबा को दिखाया। उन्होंने कुछ देर के लिए उसे पानी के हौज में डाल दिया और फिर निकालकर लगीं उसे टाट के टुकड़े से साफ करने।

"उस वक्त मुझे कुछ ऐसा जान पड़ा, मानो दरवाजे से आती हुई रोशनी किसी ने छेंक ली है। नजर उठाकर देखा, तो मुंह से एक चीख निकल पड़ी। बेहोशी की हालत में जिसे देखा था वही आठफुटा 'राक्षिस' कमरे के अन्दर एकदम नंगा खड़ा है। कपड़ों की मद में उसके सिर पर हरी पगड़ी थी, और दाहिने हाथ में एक बहुत भारी और चौड़े फल की तलवार लिये था।

"बेगम तो उसे देखते ही चीख मारकर बेहोश हो गयीं। थोड़ी देर के लिए तो मैं भी सकते में आ गया, पर आखिर फौज में काम कर चुका था···बड़े-बड़े बहादुर जरमनों को जमीन चटा चुका था। हिम्मत करके ऊंची आवाज में कहा, 'कौन हो तुम ? कैसे की जुर्रत तुमने सात परदे में रहने वाली बेगम के सामने इस तरह नंगे आने की ?'

"न जाने किस जबान में जवाब दिया उसने। बाद को उसी से मालूम हुआ कि उसकी मादरी जबान मिसरी थी।

"खैर, कोई भी हो तुम। जाओ, और अगर फिर आना चाहते हो, तो बाकायदा कपड़े पहनकर आओ। बस, जाओ, 'राइट अबाउट टर्न। क्विक मार्च'। वह चुपचाप चला गया।

"जैसे-तैसे ठण्डे पानी के छींटे डालकर बेगम को होश में लाया। 'कौन था यह ?' उन्होंने पूछा। 'शहर में सर्कस आया हुआ है, उसी में का कोई होगा,' मैंने जवाब दिया। 'भई ऐसे आदमियों को घर में न घुसने दिया करो,' वे बोलीं। 'अबके आवेगा तो गोली मार दूंगा,' मैंने भरोसा दिलाया।

"चाय के बाद बेगम फिर उस दिये को साफ करने लगीं। इतने में वह 'राक्षिस' पता नहीं किधर से फिर सामने आ खड़ा हुआ। फर्क इतना कि इस बार वह हरे रंग का रेशमी तहमद बांधे हुए था।

" 'क्या बात है ?' मैंने पूछा, 'क्या भूखे हो ?' वह बेवकूफ की तरह मुंह बाए खड़ा हो गया। पहले तो न जाने कौन जबान बोलता रहा, फिर टूटी-फूटी हिन्दुस्तानी में बेगम की ओर इशारा करके बोला, 'मैं तो इसका गुलाम हू।' पहले तो समझा, शोहदेपन पर उतर आया है, पर उसका चेहरा इस कदर बेवकूफाना था कि यह खयाल जमा नहीं।

"मेरे इशारे पर बेगम उसके लिए कुछ खाने को ले आयीं, जिसे वह इतनी जल्दी चटकर गया कि फिर लाना पड़ा। खाते-

खाते उसने कहा, 'कुछ काम बतलाइए।'

"सच बात तो यह है कि उसके पहाड़-जैसे जिस्म को देखकर डर लग रहा था! सिर्फ इस मौके पर उसे टालने के लिए मैं उसे अपने उस ढहे हुए मवेशीखाने के पास ले गया, जिसे उस जगह से हटाकर मैं कुछ मेवे के दरख्त लगाना चाहता था। 'देखो जी, यह मलवा साफ करके वहां पर ढेर लगाओ।' कहकर मैंने उसे काम पर लगा दिया और घर वापस चला आया। सोचा, चलो हफ्ते भर की छुट्टी हो गयी। यही न कि खाता जरा जियादा है, पर फिर भी सस्ता रहेगा।

"शाम को न तो वह मजदूरी मांगने आया और न खाने के लिए। मैंने सोचा, चलो छुट्टी मिली? सवेरे खेत देखने जो निकला, तो देखा, जहां मवेशीखाना था वहां सपाट मैदान था। बेगम ने देखा, तो अचम्भा करने लगीं। बोलीं,'आखिर गया कहां?' मैंने कहा, 'खुदा जाने।'

"कई दिन बीत गये। वह आदमी दिखायी न दिया। मैंने सरकस वालों से पता लगाया, तो मुझे बतलाया गया कि इस डील-डौल का कोई आदमी उनके पास नहीं। न पास-पड़ोस के किसी शख्स ने इस तरह के आदमी का जिक्र किया।

" 'अजीब बात है।' बेगम बोलीं,'कौन है यह आदमी, जो कुछ घण्टों में दस दिन का काम कर डालता है? अच्छा मियां, एक बात पर गौर किया? दो दफा वह आया और दोनों दफा मैं चिराग साफ कर रही थी। अरे, कहीं यह अलिफ लैला वाला अलाद्दीन का चिराग तो नहीं है?'

"बेगम की खुशमिजाजी पर मुझे बड़ी हंसी आयी। बहुत दिनों बाद आज वे मुस्करायी थीं। मैंने कहा, 'तो इसमें क्या बात है, बेगम। रगड़ो चिराग और बुलाओ जिन्न को!'

"उधर बेगम ने टाट रगड़ा नहीं, और उधर जिन्न हाजिर। 'कौन हो तुम?' मैंने पूछा। 'मैं हूं जिन्न। इस चिराग का गुलाम।' वह बोला। 'क्या-क्या कर सकते हो?' मैंने पूछा। 'चिराग का मालिक जो भी हुक्म दे।' वह बोला।

" 'अच्छा तो साटन का एक सफेद दस्तरखान लाओ।' बेगम ने कहा, 'और मुर्ग मुसल्लम, शामी कबाब, मीठे टुकड़े, तन्दूरी रोटिया और कई तरह के मेवे। देखें तो तुम कैसे जिन्न हो।'

"और पांच मिनट के अन्दर सब कुछ हाजिर था। हम दोनों ने पेट भर खाया और जिन्न को भी खिलाया। बेगम साहिबा के मुंह में खून लग गया था। 'जिन्न भाई, मेरे लिए चार ठो जरी के काम के रेशमी बुरके ले आना और इतने ही बढ़िया दुपट्टे, कमीजें और गरारे। और सुनो, मिरजा साहब के लिए बढ़िया शेरवानियां, कुरते, रूमाल और जूते। देखो देर न करना।'

"हफ्ते भर के अन्दर हमारा घर कीमती असबाब से भर गया। मकान की मरम्मत हो गयी। नया मवेशीखाना बन गया जिसमें चार बीस-बीस सेर दूध देने वाली गायें और दो हाथी-जैसी भैंसें बंधी हुई थीं। और अस्तबल में थे दो कलारास

घोड़े। मोटर के लिए बेगम की राय न हुई। हां, एक ट्रैक्टर जरूर आ गया। अभी तक घर का सारा काम हम लोग खुद कर लेते थे। अब जिन्न साहब की मेहरबानी से हमारे जिम्मे सिर्फ सोच-सोचकर नयी-नयी फरमायशें करना रह गया था। रुपये की जरूरत हुई, तो जिन्न साहब कहीं से दस हजार अकबरी अशर्फियां ले आये। 'ये कहां से लाये, भाई ?' मैंने पूछा। 'फतहपुर सीकरी में फैजी के मकान में दफन थीं।' वह बोला।

"यहां तक तो सब कुछ ठीक ही ठीक था। पर आगे चलकर मुसीबतें शुरू हुईं। पड़ोस में एक मुंशीजी का फार्म था। निहायत झगड़ालू आदमी। रोज कुछ न कुछ बखेड़ा लगाये रहते। मेरे घर के साज-सामान देखकर उनके कलेजे पर सांप लोटने लगा। जहां-जहां मुमकिन हो सकता था, शिकायतें कर आये। और फिर तो जनाब लग गया तांता जांच करने वालों का। इनकम टैक्स इंस्पेक्टर साहब ने पूछा, 'ये सोने-चांदी के बरतन कहां से आये ? ये गाय-भैंसें और घोड़े कहां से खरीदे ? यह ट्रैक्टर कितने का आया ? सब हिसाब लगाकर इनकम टैक्स, सरचार्ज, सुपर टैक्स वगैरह कसकर बांध दिये। न जाने किस बहाने तलाशी हुई, तो सवाल पैदा हुआ कि ये अकबरी अशर्फियां कहां से आयीं ? कानूनन दफीना में मेरा चालान हो गया। और टैक्सों की न पूछिए—भूमि-कर, भूमि-भवन कर, पेशा टैक्स, अल्लम टैक्स, गल्लम टैक्स, न जाने कितने ठोंक दिये गये। नगरपालिका ने कहा, 'मवेशी-खाने का नक्शा क्यों पास नहीं कराया। यह लो चालान। एक्जीक्यूटिव आफीसर साहब ने अपना हक पाने की शिकायत की। चुंगी वालों ने कहा, 'इतना सामान आ गया और न चुंगी और न मुंशीजी का हिस्सा !

"इन सबको खुश करने के लिए मुझे वह-वह करना पड़ा जो बयान नहीं कर सकता।

"यह बात नहीं कि जिन्न ने मेरी मदद न की हो। दर्जनों बार अदालत से मिसलें उठा लाया। गोल्ड कण्ट्रोल वालों के सब कर्मचारी चीन पहुंचा दिये, जहां वे माओ साहब के अतिथि बने जेल में बन्द हैं। एक जज को सिंगापुर, उनके पेशकार को टोकियो और इनकम टैक्स आफिसर को टिम्बकटू पहुंचा दिया, जहां से वे महीनों बाद लौट पाये। पर इन बातों से पेचीदगियां बढ़ती ही गयीं, घटी नहीं।

"एक दिन रात भर बेगम के साथ-बहस-मुबाहसे के बाद चिराग रगड़कर मैंने जिन्न को तलब किया। 'क्या हुक्म है सरकार ?' कहकर वह हाथ बांधकर खड़ा हो गया।

"यह लो चिराग, जिन्नमियां, और चलते-फिरते नजर आओ। आज से मुझे न तो तुम्हारी जरूरत है और न इस चिराग की। बस, एकदम जाओ, राइट अबाउट टर्न। क्विक मार्च।'

"पलक मारते जिन्न गायब हो गया और मेरे सिर से बड़ा बोझा उतर गया।

"तभी से जनाब, भाई साहब, मैं

पीतल के इन चिरागों से बहुत डर गया हूं। हाथ जोड़कर आप से कहता हूं कि मुझे इनके मालिक के पास ले चलिए, फिर मैं सब बना लूंगा।"

मिरजाजी की कथा समाप्त हो गयी। "अब मिरजाजी, जरा आराम कर लीजिए।" मैंने कहा, "मैं जरूर आपको दुलहे के पिता के पास ले चलूंगा। देखिए पीछे की सीट खाली हो गयी है। आप जरा लेट लीजिए।"

जब बस मेरे गंतव्य स्थान पर पहुंची, तो मिरजाजी खर्राटे ले रहे थे। चुपचाप हम तीनों उतरे। अपना सामान उतरवाया। मैंने संक्षेप में ठाकुर साहब तथा दिवाकरजी से मिरजाजी की कथा सुनायी।

"पागल नहीं, बदमाश है साला।" ठाकुर नगीनासिंह बोले, "कहो तो उठाकर लगाऊं दो पटकनी।"

"अरे जाने दो।" मैंने कहा, "मार तो खा ही चुका है। अब सोने दो। जग जायगा, तो हम लोगों का पीछा पकड़ लेगा।"

"बट नैचुरल।" दिवाकरजी बोले।

● ● ●

कुत्ता आपका या…?

दरवाजे पर दस्तक हुई। उसने दरवाजा खोला। एक लम्बे-से सज्जन थे और उनके साथ खूंख्वार-सा दिखने वाला एक कुत्ता था। अन्दर आकर वे सज्जन सोफे पर बैठ गये, फिर उन्होंने फ्लैट के सम्बन्ध में बात शुरू की, "मैंने आज के अखबार में आपका इश्तहार पढ़ा था। क्या आप मुझे वह फ्लैट दिखाइएगा?"

इस बीच कुत्ता गुर्राता हुआ मेज के इर्दगिर्द घूमने लगा। फिर पलंग पर चढ़ गया और जोर-जोर से भौंकने लगा।

उसने फ्लैट देखने आये सज्जन से कहा, "आपका कुत्ता बिलकुल जंगली है। क्या आपने इसे सभ्य रहने की ट्रेनिंग नहीं दी है?"

"माफ कीजिएगा, मैं समझता था यह आपका कुत्ता है।"

बिल्ली की पूंछ पर खड़ा होना : एक दलील

किसी व्यक्ति से जब कोई गलत काम हो जाता है, तो वह अपना कसूर किसी और के सिर मढ़कर बच निकलता है। जब उससे कुछ पूछा जाता है, तो वह उसी तरह जवाब देता है, जिस तरह एक अंगरेज बच्चे ने एक बार जवाब दिया था—

"तुम बिल्ली की पूंछ क्यों खींच रहे थे?"

"मैं बिल्ली की पूंछ नहीं खींच रहा था, मम्मी। मैं केवल उस पर खड़ा था। बिल्ली खुद अपनी पूंछ खींच रही थी।"